शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 15 अंक : 4 1 नवम्बर 2022

कार्तिक-मार्गशीर्ष मास, विक्रम संवत् 2079

संस्थापक
स्व. मुकुन्दराव कुलकर्णी

परामर्श
के.नरहरि
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल
शिवानन्द सिन्दनकेरा
जी. लक्ष्मण

सम्पादक
डॉ. राजेन्द्र शर्मा

सह सम्पादक
डॉ. शिवशरण कौशिक
भरत शर्मा

संपादक मंडल
प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
डॉ. ओमप्रकाश पारीक
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. दीनदयाल गुप्ता

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी : **नौरंग सहाय 'भारतीय'**

कार्यालय प्रभारी : **आलोक चतुर्वेदी**

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राजस्थान) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष : 8920959986

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

वार्षिक शुल्क ₹ 250/-
दस वर्षीय शुल्क ₹ 2000/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

राष्ट्र निर्माण और शिक्षक

❑ **डॉ. गीताराम शर्मा**

आज शिक्षा में चिन्तनीय यह है कि समय के प्रभाव से अध्यवसाय पिछड़ गया है और व्यवसाय हावी है। जिस शिक्षक को विद्या और विद्यार्थी के प्रति बफादार होना चाहिए वह अब व्यवसाय के प्रति बफादार हो चला है। इसलिए विद्यार्थी और शिक्षक के बीच पूंजी और व्यवसायिकता व्यवहार बन कर खड़ी हो गयी हैं।

6

तेजस्विनावधीतमस्तु का जाना पहचाना सांस्कृतिक शंखनाद कुछ मन्द हो चला है। लेकिन यह केवल समय का सच है, जो शाश्वत सच को थोड़ा अभिभूत ही कर सकता है, अपास्त नहीं कर सकता।

अनुक्रम

3.	सम्पादकीय	- डॉ. राजेन्द्र शर्मा
5.	राष्ट्र निर्माता आचार्य	- वासुदेव प्रजापति
12.	वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और शिक्षक की भूमिका	- डॉ. ओ. पी. देवासी
14.	विचारधारात्मक परिवर्तन और शिक्षक	- डॉ. चन्द्रवीर सिंह भाटी
16.	सामाजिक परिवर्तन में शिक्षक की भूमिका	- प्रो. प्रकाश चंद्र अग्रवाल
18.	समाज परिवर्तन में शिक्षक की भूमिका	- डॉ. ओम प्रकाश पारीक
21.	The Role of teacher in social change	- Dr. P.C. Jain
23.	वर्तमान में शिक्षक की वैचारिक स्वतंत्रता...	- डॉ. शिवशरण कौशिक
25.	वर्तमान शिक्षा व्यवस्था एवं शिक्षक	- डॉ. मुस्कान
28.	वैश्वीकरण के दौर में हिंदी की वैश्विक स्थिति	- डॉ. राजकुमार उपाध्याय
32.	राष्ट्र भाषा, राष्ट्र लिपि और राष्ट्रीय एकीकरण!	- प्रो. रसाल सिंह
35.	राष्ट्रभाषा का प्रश्न और हिंदी	- मोहन कुमार
37.	शोध की उच्च शिक्षा में महत्ता	- डॉ. दिलीप सरदेसाई
39.	महाराष्ट्र के प्रमुख संत एवं उनका साहित्य	- डॉ. मनोज कुमार

Nation Building and Teachers

❑ **Dr. T.S. Girishkumar**

Among all trainers, the role of teachers is very crucial. They are stationed in society to provide first hand trainings in the desired manner and it also becomes their profession. Albeit it remains a fact that homes are always the first school in any individual's life, it is from the real teachers that systematic training gets imparted. It is also a fact that children spent more time with their teachers on a practical plain than time spent with families. Further, the teachers have a system of teaching, a pattern to follow as well as a testing mechanism.

9

संपादकीय

डॉ. राजेन्द्र शर्मा
सम्पादक

प्राचीन भारत की ज्ञान-संस्थापना में जिस प्रकार से गुरु का महत्त्वपूर्ण योगदान होता था, उसी प्रकार आधुनिक भारत के निर्माण में भी शिक्षक की भूमिका अपरिहार्य है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि भारतीय जीवन-पद्धति में अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से शिक्षक का चिरकाल से ही विशिष्ट महत्त्व रहा है। शिक्षार्थी की चित्तवृत्तियों तथा दैनिक कार्य और व्यवहार को उच्चता की ओर उठाने के लिए आवश्यक परिवर्तन गुरु या शिक्षक ही करते रहे हैं। उपनिषदों का कथन है -

यस्य देवे परा भक्तिः
यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था
प्रकाशन्ते महात्मनः।।

''जिस साधक की अपने इष्ट देव में भक्ति है, उतनी ही भक्ति गुरु में होने पर ही उसे वेदांत का अर्थ बोध होता है'' इस आशय के उक्त श्लोक में गुरु के महत्त्व को उसके ज्ञान की उत्कृष्टता के आधार पर ही सिद्ध किया गया है। माना जाता है कि नागरिकों के जीवन को शास्त्रीय निकष प्रदान करने वाली जीवंत शक्ति का प्रणेता एक शिक्षक ही होता है। यह शिक्षक ही है जो विद्या की दृष्टि से ग्रहण का भाव विद्यार्थी में जाग्रत करता है तथा उपभोग की दृष्टि से उसे ग्रहण की भावना के स्थान पर त्याग की भावना सिखाता है। वस्तुतः शिक्षा और मानव का सांस्कृतिक विकास परस्पर अंतर्ग्रथित है। दूसरी ओर शिक्षा की सार्थकता समाज को गतिशील बनाने में और सफलता उसे नयी तथा रचनात्मक दिशा देने में है।

ज्ञान की मौलिकता का आधार मूलतः विचार की मौलिकता ही होता है। साथ ही किसी समृद्ध देश के नागरिकों को राष्ट्रोत्थान के साथ स्वयं के कर्तव्यों का पालन करना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि उनके द्वारा राष्ट्र से कुछ प्राप्त करना जरूरी लगता है।

भारतीय संस्कृति में तीर्थों का अत्यधिक सांस्कृतिक और सामाजिक महत्त्व रहा है । पुण्यमयी नदियों के किनारे इन तीर्थ-स्थलों का अवस्थित होने एवं इनके सम्मिलन से नगर सभ्यताओं का विकास भी भारत में होता रहा है। प्राचीन काल से ही इन तीर्थ स्थलों की यात्रा का भाव संपूर्ण देश के नागरिकों के हृदय में अपने आत्मोत्थान के लिए प्रबल रहा है। वर्तमान परिस्थितियों में तीर्थाटन और पर्यटन दोनों का मिलाजुला रूप भारत में विकसित हो रहा है, उदाहरण स्वरूप - काशी विश्वनाथ की नगरी वाराणसी, श्री राम जन्मभूमि अयोध्या, ज्ञानवापी श्री कृष्ण धर्मस्थल आदि के समान ही अनेक तीर्थ स्थलों का इस प्रकार से विकास किया जा रहा है कि वहाँ शिक्षा, अनुसंधान और ज्ञान-विज्ञान के समुन्नत और साधन-संपन्न संस्थानों का निर्माण किया जा सके और भारत को पुनः संस्कृति-संपन्न, अर्थ-संपन्न तथा एकता-संपन्न राष्ट्र बनाया जा सके।

हमारे देश में हाल ही में 31 अक्टूबर को लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की 144 वीं जयंती मनाई गई है एवं भारत सरकार द्वारा सन् 2014 से राष्ट्रीय एकता दिवस के रूप में प्रतिवर्ष मनाने का संकल्प किया गया है। भारत के प्रथम गृह मंत्री के रूप में अखंड भारत का सपना देखने तथा 1928 में बारदोली सत्याग्रह में किसान आंदोलन का सफल नेतृत्व करने वाले सरदार पटेल पूर्ण स्वराज्य के प्रबल समर्थक थे। आज 'इंडिया से भारत की ओर' की संकल्पना सरदार वल्लभभाई पटेल के जीवन-आदर्श से ही अनुप्राणित है। आज भारत को परिवारवाद, तुष्टीकरण, भ्रष्टाचार, क्षेत्रवाद तथा जातिवाद जैसी समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। इनके समुचित समाधान के लिए पुनः समूचे भारत के राष्ट्रीय एकीकरण के द्वितीय संस्करण की महती आवश्यकता है जिसे सफल बनाने के लिए भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री कृतसंकल्प हैं। यह एकीकरण 'सबका साथ-सबका विकास-सबका विश्वास' जैसी सार्थक और रचनात्मक संकल्पनाओं के साथ पूरा होगा, ऐसा विश्वास है। ❑

राष्ट्र निर्माता आचार्य

वासुदेव प्रजापति

सह सचिव, विद्या भारती
संस्कृत शिक्षा संस्थान,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

हमारा राष्ट्र भारत सदैव ज्ञान की साधना में रत रहा है। हमारे सांस्कृतिक राष्ट्र की ज्ञान पताका को सम्पूर्ण विश्व में फहराने का कार्य अनेक आचार्यों ने अपने अपने समय में किया है। उनमें भगवान वेदव्यास, योगीश्वर याज्ञवल्क्य, आचार्य चाणक्य और जगद्गुरु शंकराचार्य के नाम उल्लेखनीय हैं। अलग-अलग देशकाल व परिस्थिति में इन आचार्यों ने अपना-अपना दायित्व स्वीकारा और राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान दिया। ऐसे प्रमुख आचार्यों का जीवन आज भी हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत हैं।

व्यास परम्परा के प्रणेता : वेदव्यासजी

आपका नाम कृष्ण था, एक द्वीप में आपका जन्म होने के कारण आपको कृष्ण दैपायन कहा जाता था। किन्तु गत पाँच हजार से भी अधिक वर्षों से आप वेदव्यास नाम से ही विख्यात हैं। आपने चारों वेदों के बिखरे पड़े मंत्रों का संकलन किया, सम्पादन किया और अध्येताओं के लिए अध्ययन हेतु सुलभ हों, इस हेतु उन्हें चार वेदों में वर्गीकृत किया। वर्गीकृत करने के बाद अपने चार शिष्यों को एक एक वेद के अध्ययन-अध्यापन और उनके प्रसार का दायित्व भी सौंपा। जगत के उन आद्य सम्पादक की आज भी ज्ञान क्षेत्र को महती आवश्यकता है।

आपने केवल वेदों का सम्पादन ही नहीं किया, अपितु विभिन्न स्तरों, योग्यताओं व क्षमताओं के लोगों के लिए ज्ञान को उनके स्तर के अनुकूल शैली में प्रस्तुत किया। पंडित लोग जिस वेदान्त पर हजारों वर्षों से शास्त्रार्थ कर रहे हैं, उसके मूल ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र की रचना भी आपने ही की थी। गत पाँच हजार वर्षों से भी अधिक समय से जीवन के सभी आयामों में मार्गदर्शक बन सके ऐसे सर्व उपनिषदों के साररूप श्रीमद्भगवद्गीता की रचना भी आपने ही की। वहीं धर्म, अर्थ काम और मोक्ष का सार्वकालिक मार्गदर्शन कर सके ऐसे विशाल इतिहास ग्रन्थ महाभारत की रचना भी आपने ही की थी, जिसके बारे में कहा जाता है कि ''यदिहस्ति तदन्यत्र यन्नेहस्ति न तत्क्वचित्'' अर्थात् जो इस ग्रन्थ में है वही अन्यत्र भी है और जो इसमें नहीं है वह अन्यत्र कहीं नहीं हैं।

इतना अधिक श्रेष्ठ साहित्य लेखन कर लेने पर भी आपको संतुष्टि नहीं मिली। आपके मन में तो सर्वसामान्य व्यक्ति तक वैदिक ज्ञान पहुँचाने की ललक थी। इसलिए आपने सामान्यजन को भी वेदों का रहस्य सुलभ हो इस हेतु से अठारह पुराणों की रचना की। और उनमें अत्यन्त सरल भाषा में पाप व पुण्य की अवधारणा को समझा दिया।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वय।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

व्यासजी के इस महत्त्वपूर्ण कार्य के फलस्वरूप ही हमारे देश में व्यास परम्परा निर्माण हुई, जो अबतक चल रही है। आज भी सर्वसाधारण समाज सत्य व धर्म के मार्ग का अनुसरण कर सके, इस हेतु से जो लोक कल्याणकारी कथा कहता है वह व्यास कहलाता है और जिस मंच पर बैठकर वह कथा कही जाती है, उसे व्यासपीठ कहा जाता है। राष्ट्र को अज्ञान रूपी अन्धकार में से निकाल कर ज्ञान रूपी प्रकाश में आलोकिक करने वाले राष्ट्र निर्माता भगवान वेदव्यासजी आज भी हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत हैं।

आद्य संन्यासी : याज्ञवल्क्य

याज्ञवल्क्य का जीवन ज्ञानक्षेत्र के एक विशेष आयाम को उद्घाटित करता है, वह है विद्वता। विद्वता का स्वाभिमान और गौरव कैसा होता है ? ज्ञान की उपासना का प्रभाव कितना होता है? इसका प्रत्यक्ष उदाहरण स्वयं याज्ञवल्क्य हैं। जब उन्होंने पूजा की और उस पूजा का तीर्थ वृक्ष के सूखे तने पर गिरा तो वह सूखा तना हराभरा हो गया। सार्थक अध्ययन रूपी तप का इससे अधिक परिणाम नहीं हो सकता।

आपके लिए शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त

करना हस्तामलकवत् है। उनमें पराकोटि का आत्मविश्वास भरा था तभी तो वे शास्त्रार्थ से पूर्व ही महाराज जनक के द्वारा प्रस्तुत स्वर्णजड़ित एक सहस्र गौएँ हाँक ले जाने का आदेश अपने शिष्य को दे पाये थे। परन्तु शास्त्रार्थ में विजय पाना पराजित होने वाले की मृत्यु है, इसका भान होते ही उन्हें ज्ञान और मिथ्याज्ञान का भेद समझ में आ गया। उन्होंने तत्काल ही संन्यास लेने का निश्चय कर लिया।

ज्ञान और ज्ञान से प्राप्त यश, कीर्ति, सम्मान व धन आदि सत्य नहीं है। अतः उपासना ज्ञान की करनी चाहिए, यश-कीर्ति और धन की नहीं। इन सबके मोह से ऊपर उठने पर ज्ञान स्वयं ज्ञान साधक का वरण कर लेता है। ऐसे आत्मसाक्षात्कार से आप्लावित होकर ही याज्ञवल्क्यजी ने संन्यास लिया था। वे जगत के आद्यसंन्यासी थे और निवृत्ति मार्ग भी आपसे ही आरम्भ हुआ था।

ज्ञान के इस गौरव का आज देश ऋणी है। इन्हीं से प्रेरणा लेकर आज भी भारतमाता के अनेक ज्ञान साधक ज्ञान के गौरव को बचाए हुए हैं। इसीलिए हम आपका पुण्यस्मरण करते हैं।

आचार्यत्व के गौरव चाणक्य

चाणक्य को आचार्य होने का गौरव प्राप्त है। जगत के सभी पदों व उपाधियों से आचार्यत्व को वे श्रेष्ठ मानते हैं। समाज पर जब संकट आता है तो आचार्य चाणक्य का तक्षशिला विद्यापीठ सामाजिक चेतना का केन्द्र बन जाता है। विद्यार्थी और आचार्य अपना नित्यकर्म अध्ययन व अध्यापन छोड़कर समाज जागरण, दुष्ट उन्मूलन और सुस्थिति स्थापन में लग जाते हैं। उस समय वे अपने अध्ययन की चिन्ता नहीं करते अपितु राष्ट्र रक्षा के कार्य को प्रथम वरीयता देते हैं। राष्ट्र सुरक्षित रहा तो विद्यापीठ पुनः विद्या प्राप्ति के कार्य में जुट जायेगा, किन्तु राष्ट्र ही सुरक्षित नहीं रहा तो विधर्मी विद्यापीठ का समूल नाश कर देंगे।

उन्होंने एक राष्ट्र निर्माता आचार्य का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। उनका विषय राजनीति था, किन्तु वे मात्र विषय पढ़ाने वाले आचार्य नहीं थे। उन्होंने राजनीति को प्रजाजीवन का नियमन करने व उन्हें सुरक्षा दिलाने वाली बनाया। उन्हें यह प्रतीति हो रही थी कि राष्ट्र दुर्बल हो रहा है, सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है। ऐसा राष्ट्र कभी भी परकीय आक्रमणों का शिकार बन सकता है। इसलिए राष्ट्र को संगठित करना अत्यन्त आवश्यक है। अतः आचार्य चाणक्य ने विद्यापीठ के सक्रिय सहयोग से विलासी सम्राट धनानन्द को अपदस्थ कर चन्द्रगुप्त को पदासीन किया। राज्य को सबल व सुरक्षित किया। सिकन्दर के आक्रमण के कुछ वर्षों बाद जब उसी के सेनापति सेल्यूकस ने पुनः भारत पर आक्रमण किया, तब तक वे राष्ट्र को संगठित कर चुके थे। संगठित व बलशाली राष्ट्र ने सेल्यूकस को ऐसी धूल चटाई कि उसे अपनी बेटी हेलेना की शादी चन्द्रगुप्त के साथ करके जान बचानी पड़ी। यह कूटनीतिक चाल चाणक्य की प्रखर बुद्धि की ही उपज थी।

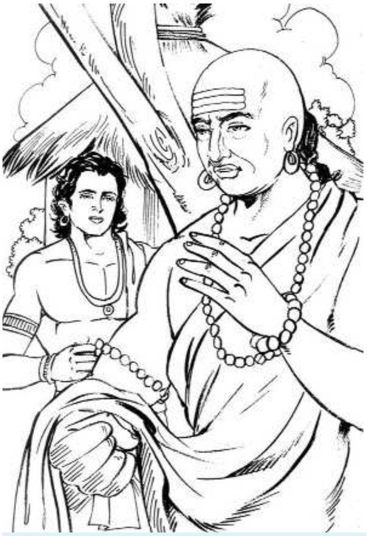

चाणक्य को आचार्य होने का गौरव प्राप्त है। जगत के सभी पदों व उपाधियों से आचार्यत्व को वे श्रेष्ठ मानते हैं। समाज पर जब संकट आता है तो आचार्य चाणक्य का तक्षशिला विद्यापीठ सामाजिक चेतना का केन्द्र बन जाता है। विद्यार्थी और आचार्य अपना नित्यकर्म अध्ययन व अध्यापन छोड़कर समाज जागरण, दुष्ट उन्मूलन और सुस्थिति स्थापन में लग जाते हैं। उस समय वे अपने अध्ययन की चिन्ता नहीं करते अपितु राष्ट्र रक्षा के कार्य को प्रथम वरीयता देते हैं। राष्ट्र सुरक्षित रहा तो विद्यापीठ पुनः विद्या प्राप्ति के कार्य में जुट जायेगा, किन्तु राष्ट्र ही सुरक्षित नहीं रहा तो विधर्मी विद्यापीठ का समूल नाश कर देंगे।

असंगठित राष्ट्र को संगठित कर उसे निष्कंटक बनाने वाले आचार्य चाणक्य ही थे। जिन्होंने आवश्यकता पड़ी तो आचार्य पद छोड़ा और महामात्य का पद स्वीकारा। अपने धुर विरोधी पूर्व महामात्य राक्षस को अपने स्थान पर बैठाकर पुनः आचार्य के पद को सुशोभित किया। इसे कहते हैं आचार्यत्व का गौरव।

राष्ट्रीय एकता के पुरोधा : शंकराचार्य

आचार्य शंकर ने राष्ट्र के दूषित ज्ञानक्षेत्र और अव्यवस्थित धर्मक्षेत्र को परिष्कृत और व्यवस्थित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। शंकराचार्य में ज्ञान, भावना और कृति का अद्भुत समन्वय था। वे निवृत्ति धर्म के प्रवर्तक भी थे। निवृत्ति मार्ग का उपासक और उपदेशक भी कितनी अविराम प्रवृत्ति कर सकता है, इसका वे ज्वलन्त उदाहरण थे।

आपने बहुत कम समय में विपुल साहित्य की रचना कर लोगों का मार्ग प्रशस्त किया। और सम्पूर्ण राष्ट्र का भ्रमणकर उसके साथ एकात्म स्थापित किया। साथ ही साथ चारों दिशाओं में चारधाम स्थापित कर राष्ट्र को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बाँधा। चारधामों के साथ चारपीठ खड़ी की और प्रत्येक पीठ में वेद का एक एक ध्येय वाक्य देकर वैदिक शिक्षा की पुनीत धारा प्रवाहित कर ज्ञान की दूषित धारा को निर्मल बनाया। ऐसे विलक्षण राष्ट्र निर्माता थे, जगद्गुरु शंकराचार्य। राष्ट्र इन सभी आचार्यों का ऋणी है। आज हमें उसी आचार्य की गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करना है। ❑

राष्ट्र निर्माण और शिक्षक

डॉ. गीताराम शर्मा

सह आचार्य -
संस्कृत राजकीय
कन्या महाविद्यालय
धौलपुर (राज.)

संस्कृत में एक सुभाषित है -

राष्ट्रं समाजतः सिध्येत् ,
समाजो व्यक्तिभिस्तथा।
व्यक्तिः चरित्रतः सिध्येत्
चरित्रं तूच्चशिक्षया।

भावार्थ यह है कि राष्ट्र समाज से सिद्ध होता है, समाज व्यक्तियों से, व्यक्ति चरित्र से और चरित्र उच्च शिक्षा से सिद्ध होता है। इस प्रकार राष्ट्र सिद्धि का प्रथम और सर्वोत्तम साधन और सोपान उच्च शिक्षा है। इस सुभाषित में राष्ट्र सिद्धि के लिए वांछित उच्च शिक्षा का अभिप्राय ऊंची डिग्रियाँ तथा तदनुसार ऊंचे पैकेज प्रदान कराने वाली मूल्यहीन तथाकथित शिक्षा तो कदापि नहीं हो सकती। जिस शिक्षा को राष्ट्र सिद्धि का साधन बनने के लिए सक्षम बनना है वह ऐसी गुणात्मक शिक्षा ही हो सकती है जो उच्च उद्देश्य और आदर्शों से आपूरित सभ्य और भव्य समाज के निर्माण में सहयोगी बन सके। राष्ट्र भद्रकामी, सुसम्पन्न और सभ्य समाज से ही तो सिद्ध हो सकता है। ऐसा सभ्य और भव्य समाज सिद्ध होता है उच्च आदर्श सम्पन्न सक्षम व्यक्तित्ववाही व्यक्तियों के सद्प्रयत्नों से। ऐसे व्यक्ति जो उत्साह, अनालस्य, क्रियाविधिज्ञ, व्यसनमुक्त, शौर्य सम्पन्न, कृतज्ञ और दृढ़ तथा रचनात्मक शुभ संकल्पों, प्रेरणाओं, आदर्शों और आचरणों से अपने अतीत से प्रेरणा लेकर भविष्य की भव्य आकांक्षाओं के ध्येय से वर्तमान में प्रतिक्षण कर्तव्य पथ पर चलने के लिए कृत संकल्प हों। ऐसे व्यक्ति जिनके पास साधन भले ही स्वल्प हों लेकिन सत्व सम्पन्नता भरपूर हों। अर्थात् सर्वतोभद्र कामी सक्षम चरित्रवान व्यक्तित्वों का निर्माण करना शिक्षा का मूल कार्य है। ऐसी शिक्षा का असली सूत्रधार शिक्षक है। वस्तुतः अपने राष्ट्र का निर्माण नया नहीं करना है यह सभ्यता के ऊषा काल में ही निर्मित राष्ट्र है। यह वह राष्ट्र है जो समय के उस छोर पर खड़ा होकर ऋग्वेद की ऋचाओं को गा रहा था जब दुनिया की अन्य सभ्यताएँ सामान्य जीवन व्यवहार से भी परिचित नहीं हो पायीं थीं। जिस ने वसुधैव कुटुंबकम् के वैश्विक भाव में सबसे पहले अपनी निष्ठा व्यक्त की तथा यह संकल्प व्यक्त किया कि स्वस्थ और स्वच्छ विचार, प्रेरणा और कर्तव्य दुनिया के किसी भाग से आयें भारत उनको स्वीकार करेगा, उनको अपने राष्ट्रीय चरित्र का हिस्सा बनायेगा। भारत का राष्ट्रवाद सच में तो विश्ववाद है।भारत का राष्ट्र हित विश्व हित है। समग्र मानवता के कल्याण के लिए धर्म दर्शन विज्ञान, कला, जीवनीय विद्याओं का आविर्भाव भारत में हुआ। समय समय पर जब जब विश्व को योग क्षेम की आवश्यकता हुयी तब तब परमात्म शक्ति ने भिन्न-भिन्न रूपों में अवतरित होकर विश्व भर को सम्बल दिया। भारत की आस्था सर्वं खलु इदं ब्रह्म की है। कण कण में परमात्म दर्शन की है। इसलिए जब जब किसी आसुरी शक्ति, सभ्यता और संस्कार ने पिण्ड में ब्रह्माण्ड रूपता को विकृत किया तब तब भारत ने अपनी इच्छा क्रिया और ज्ञान से आसुरी शक्तियों के विरुद्ध खड़े होकर सत्यमेव जयते का जय नाद किया। इसलिए भारत का निर्माण नहीं करना है, समय के थपेड़ों से भारतीयता में जो शिथिलता उत्पन्न हुयी है उसे पुनः गति देनी है। यह राष्ट्र की अपनी परम अपेक्षा है और राष्ट्र सिद्धि में संभावित बाधाओं पर विजय पाना चुनौतियाँ हैं। ऐसी राष्ट्र सिद्धि समाज सिद्धि पर निर्भर है। सदियों से चलते हुए समाज में जो विकृतियाँ आयी हैं या पैदा की गयी हैं उन्हें दूर कर पुनः सद्भावी, समरस और गतिशील समाज, परिष्कृत परम्परा वही समाज, नये नये ज्ञान, विज्ञान अनुसंधान से

सुसज्जित समाज, जाति, पन्थ, क्षेत्र, भाषा और दूषित पूर्वाग्रहों से मुक्त समाज, अपने विलक्षण और वैभव पूर्ण अतीत, सत्व, शौर्य, ज्ञान विज्ञान को पुनर्स्थापित करने की क्षमताओं से सम्पन्न समाज राष्ट्र सिद्धि के लिए काम्य है। भारत के सन्दर्भ में एक ऐसे राष्ट्र की सिद्धि अभिप्रेत है जो अपने गौरव मय आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक समुल्लास और वैभव का पुनर्सन्धान कर अपने विश्वगुरुत्व को फिर अभिव्यक्त करने में सक्षम हो। ऐसा भद्र कामना वाला समाज जिसका आदर्श रामराज्य ने प्रस्तुत किया था –

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज्य काहू नहिं व्यापा।।
बयरु न कर काहू सन कोई।
राम प्रताप विषमता खोई।।

शिक्षा की सार्थकता तभी है जब वह सर्वविध क्षमताओं से संपन्न, श्रम, सेवा, शील, सदाचार, संयम, समर्पण, समता, ममता, बन्धुता, समरसता, एकता, आत्मानुशासन, आत्मगौरव, राष्ट्र भक्ति, स्वातंत्र्य चेतना तथा सर्वोदय की भावना से संपन्न व्यक्तित्व का निर्माण करे। शिक्षा द्वारा शारीरिक मानसिक बौद्धिक और आत्मिक रूप से सक्षम युवा राष्ट्र की सभी समस्याओं का विवेकपूर्ण समाधान करने में सक्षम हो सकते हो। राष्ट्र निर्माण के प्रति प्रतिबद्ध शिक्षक ऊर्जस्वी, ध्येयनिष्ठ, सेवाभावी तथा संवेदनशील युवाओं को राष्ट्र निर्माण के पथ पर चलने के लिए प्रेरित करने में सबसे सशक्त भूमिका निभा सकते हैं। राष्ट्र निर्माण की ध्येयोपलब्धि में शिक्षा सर्वाधिक सात्विक और सशक्त और रचनाधर्मी है। वस्तुत: युवाओं के सम्पूर्ण व्यक्तित्व निर्माण मार्ग से उनमें सामाजिक उत्तरदायित्व बोध जाग्रत करना शिक्षकों का प्रमुख कर्तव्य है। इस तरह का उत्तरदायित्व बोध और व्यवहार ही सभ्य और भव्य राष्ट्र निर्माण में सबसे बड़ा निमित्त है। श्रेष्ठ शिक्षकों के निर्देशन में शिक्षित और दीक्षित युवाओं का व्यक्तित्व सचमुच ब्रह्माण्डीय हो सकता है। शिक्षा का व्यापक उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यक्तित्व को ब्रह्माण्डीय बनाकर उन्हें राष्ट्र के लिए सशक्त और उपयोगी बनाना। समाज के प्रति संवेदना, श्रम के प्रति समादर, विविधताओं के पुष्पों से गुंथी भारतीय संस्कृति और समाज के जीवन आदर्शों के बोध और व्यवहार की समझ, सह अस्तित्व और साहचर्य मय जीवन के प्रति प्रेरणा आदि लोकतान्त्रिक मूल्यों को सशक्त करने का शिक्षक ही श्रेष्ठ पहरुआ है। स्वामी विवेकानन्द जिस पञ्च कोशीय व्यक्तित्व के निर्माण को शिक्षा का विशुद्ध उद्देश्य बताते हैं, वह श्रेष्ठ शिक्षकों के मार्गदर्शन में ही संभव है। यह सच है कि वर्तमान परिवेश में आदर्श शिक्षकों की भूमिका के निर्वाह में अनेक प्रतिकूलता हैं तथापि यदि शिक्षा, समाज और राष्ट्र के प्रति संवेदना है तो प्रतिकूलताएँ अवश्यमेव हारती हैं। आज ऐसी शिक्षा की महती अपेक्षा है जो संवेदनहीन मानव पुतलों की लम्बी कतारों की जगह गांधी, स्वामी विवेकानन्द, सुभाष, शिवाजी, चाणक्य, वीर सावरकर जैसे राष्ट्रीय चैतन्य से दीप्त व्यक्तित्व गढ़ सके। जिनके रास्ते पर चलकर विश्वभर में वरेण्य भारत सदियों से दीप्त अपने तेज का पुनरनुसन्धान कर सके। एक ऐसे राष्ट्र का पुन: निर्माण हो जहाँ सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, प्रेम, सद्भाव, सह अस्तित्व, समरसता, एकता, अखण्डता, समता, ममता, बन्धुता आदि का व्यक्ति, समाज और राष्ट्र साक्षात् अनुभव करे, आचरण करे। मैकालेवादी शिक्षा के चंगुल में फंसे युवाओं को राष्ट्र निर्माण की ओर अभिमुख करने का राष्ट्रीय कर्तव्य शिक्षक ही निभा सकते हैं।

आज शिक्षा में चिन्तनीय यह है कि समय के प्रभाव से अध्यवसाय पिछड़ गया है और व्यवसाय हावी है। जिस शिक्षक को विद्या और विद्यार्थी के प्रति बफादार होना चाहिए वह अब व्यवसाय के प्रति बफादार हो चला है। इसलिए विद्यार्थी और शिक्षक के बीच पूंजी और व्यवसायिकता व्यवहार बन कर खड़ी हो गयी हैं। तेजस्विनावधीतमस्तु का जाना पहचाना सांस्कृतिक शंखनाद कुछ मन्द हो चला है। लेकिन यह केवल समय का सच है, जो शाश्वत सच को थोड़ा अभिभूत ही कर सकता है, अपास्त नहीं कर सकता।

आज शिक्षा में चिन्तनीय यह है कि समय के प्रभाव से अध्यवसाय पिछड़ गया है और व्यवसाय हावी है। जिस शिक्षक को विद्या और विद्यार्थी के प्रति बफादार होना चाहिए वह अब व्यवसाय के प्रति बफादार हो चला है। इसलिए विद्यार्थी और शिक्षक के बीच पूंजी और व्यवसायिकता व्यवहार बन कर खड़ी हो गयी हैं। तेजस्विनावधीतमस्तु का जाना पहचाना सांस्कृतिक शंखनाद कुछ मन्द हो चला है। लेकिन यह केवल समय का सच है, जो शाश्वत सच को थोड़ा अभिभूत ही कर सकता है, अपास्त नहीं कर सकता। मैं तेजस्वी बनूं, तुम तेजस्वी बनो और दोनों मिलकर समाज को तेजस्वी बनाएँ, इस भाव को समय की कोई क्रूरता भी छीन नहीं सकती क्योंकि यह शाश्वत है। इस शाश्वत सच की सुरक्षा का सर्वाधिक उत्तरदायित्व शिक्षक का ही है। महान शिक्षा शास्त्री पूर्व राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधा कृष्णन् ने शिक्षक के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि शिक्षक वह नहीं जो पुस्तकीय ज्ञान को विद्यार्थी के मस्तिष्क में भर दे अपितु सच्चा शिक्षक वह है जो विद्यार्थी को भविष्य की चुनौतियों का सामना करने की सामर्थ्य प्रदान करें। यह काम कोई शिक्षक तब कर सकता है जब अतीत के निर्मल दर्पण के सामने बैठ कर वर्तमान की व्यवस्था में रहते हुए भविष्य के लिए रास्ते बनाने में विद्यार्थी की मदद करे। किन्तु यहाँ बड़ा विरोधाभास है। अतीत में शिक्षा के लिए तय किये हुए मूल्यों की संगति मैकाले वादी शिक्षा व्यवस्था से नहीं बैठती। भारत के शैक्षिक मूल्य कहते हैं कि शिक्षा मुक्ति के लिए है, आनन्द के लिए है। आनन्द का मार्ग प्रेम, ममता, समता, करुणा, निर्लोभ सत्य, स्नेह से होकर गुजरता है

लेकिन मैकालेवादी शिक्षा व्यवस्था संघर्ष सिखाती है, प्रतिस्पर्धा सिखाती है।

नौकरी पाने का संघर्ष धन कमाने की प्रतिस्पर्धा वर्तमान के शैक्षिक ध्येय हैं। हर अभिभावक बच्चे को यही सिखाते रहा है कि कम्पटीशन ही तेरी नियति है, उसमें पिछड़ा तो कोई नहीं पूछने वाला, बताओ जीवन की ऐसी विभीषिका से भविष्य के प्रति आशंकित विद्यार्थी अपने साथी विद्यार्थियों से प्रेम करेगा कैसे? प्रेम का सूत्र ही 'मैं नहीं तुम है' जबकि कम्पटीशन 'तू नहीं मैं' भाव से होता है। एक नौकरी के लिए सैकड़ों लाइन में हैं तो वे प्रेम कर सकते हैं क्या? प्रतिस्पर्धा तो ईर्ष्या सिखाती है, लोभ सिखाती है, ऐसी प्रतिस्पर्धा से प्राप्त नौकरी या तथाकथित सफलता अहंकार देती है, तथा इन के सहारे निर्मित भविष्य अंधकारमय हो जाता है। इस प्रकार अतीत-वर्तमान-तथा भविष्य के बीच इन बिखरे टूटे तारों को जोड़ना शिक्षक की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है। सामर्थ्यवान शिक्षक यह कर सकता है। राष्ट्र निर्माण की दृष्टि से वर्तमान के शिक्षकों का दायित्व कि वे राष्ट्र के सर्वतोमुखी भौतिक विकास और सांस्कृतिक समुत्कर्ष में समन्वय स्थापित करें। शिक्षकों के लिए अच्छे इंजिनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक, प्रबन्धक, वैज्ञानिक तैयार करना जितना आवश्यक है उतना ही राष्ट्र को सर्वोपरि मानने वाले सद्चरित्र सम्पन्न सद्नागरिक तैयार करना आवश्यक है। तभी श्रेष्ठ समाज निर्माण की संकल्पना मूर्त हो सकेगी। राष्ट्र को सर्वदा जाग्रत रखने के दायित्व में शिक्षकों की महान भूमिका से भारत का अतीत तो आलोकित रहा ही है आधुनिक भारत में भी राष्ट्र निर्माता शिक्षकों की एक बड़ी श्रृंखला है। स्वाधीनता आन्दोलन के समय शिक्षा में भी राष्ट्रवाद की नींव प्रखरता से जमाने में अनेक शिक्षकों का अद्भुत योगदान है। कुछ उदाहरण यथा- सतीश चन्द्र मुखर्जी ने 1902 में डॉन सोसाइटी में भगनी निवेदिता, जतिन मुखर्जी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, राधाकुमुद मुखर्जी, किशोरी मोहन आदि समाज प्रबोधक शिक्षकों को सदस्य नामित कर इस दिशा में बड़ा कार्य किया। डॉन सोसाइटी की स्थापना का उद्देश्य भारत की अपेक्षाओं के अनुरुप ऐसी शिक्षा व्यवस्था के लिए कार्य करना था जो धर्म और नैतिकता के साथ रोजगार मूलक व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित हो। ऐसी शिक्षा जो विद्यार्थी के चरित्र निर्माण के साथ, उन्हें आत्म निर्भर बनाने में सक्षम हो। इस दिशा में महर्षि अरविन्द का योगदान अतुल्य है। स्वयं पाश्चात्य शिक्षा पद्धति से शिक्षित होने के बाबजूद महर्षि अरविन्द का समग्र शैक्षिक चिन्तन भारतीय परम्परानुसार शिक्षा पद्धति की ओर था। वे राष्ट्रीय शिक्षा परिषद के सदस्य बने तथा सुबोध दत्त मलिक के साथ मिलकर राष्ट्रीय महाविद्यालय की स्थापना की। श्रेष्ठ शिक्षक के रूप में गुरुजी माधवराव का जीवन पूरे राष्ट्र के लिए प्रेरक है। वे विद्यार्थी को ही शिक्षक का प्रथम आराध्य मानते थे। विद्यार्थियों के प्रति समर्पण का प्रतीक गुरुजी सम्बोधन सदा के लिए उनकी पहचान बन गया। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का शिक्षक के रूप में अद्भुत योगदान है। उन्होंने प्रभावी शिक्षण के साथ प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के लिए प्रचुर साहित्य रचा जो आज के शिक्षकों के लिए बड़ी प्रेरणा बन सकता है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कानून की पढ़ाई करने के बाबजूद शिक्षक के रूप में अपनी पहचान को प्राथमिकता दी।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक स्वाभाविक राष्ट्र भक्त शिक्षक थे। राष्ट्र निर्माण में शिक्षा की गहन शक्ति में उनकी प्रबल आस्था थी। स्वामी रामतीर्थ यद्यपि सन्यासी के रूप में प्रख्यात हैं लेकिन राष्ट्र निर्माणधर्मी श्रेष्ठ शिक्षक के रूप में उनका योगदान अविस्मरणीय है। स्वामी जी का प्रयास था कि नवयुवकों का ऐसा दल तैयार हो जो समर्पित भाव से शिक्षा के लिए कार्य कर सके। राष्ट्रीय भाव से पोषित शिक्षा के विकास की योजना में आशुतोष मुखर्जी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में भारतीय अपेक्षाओं के अनुरूप अनेक विषय प्रारम्भ कराये। उन्होंने उस समय ऐसी व्यवस्था पर जोर दिया कि कलकत्ता विश्वविद्यालय में देश के सभी भागों से प्रतिभाओं को बिना भेदभाव के अध्ययन का अवसर उपलब्ध हो सके। उन्होंने देश विदेश के अनेक प्रतिभावान शिक्षकों को कलकत्ता विश्वविद्यालय में पढ़ाने के लिए प्रेरित करने का महनीय कार्य किया। राष्ट्र भक्त, शिक्षक के रूप में पूर्व राष्ट्रपति का उदाहरण तो बिल्कुल नया और अभिनव है। बड़े वैज्ञानिक तथा राष्ट्रपति जैसे सर्वोच्च पद पर रहते हुए भी देश के विभिन्न भागों में जाकर बच्चों से बातें करना, उनके मन में जिज्ञासा पैदा करना, देश के प्रति निष्ठा जाग्रत करना, देश काल की वैश्विक आवश्यकताओं के सापेक्ष श्रेष्ठ भारत के स्वप्नदर्शी विद्यार्थी तैयार करना, भारत सरकार के वैज्ञानिक सलाहकार जैसे महत्त्वपूर्ण दायित्व से मुक्ति मांगकर अन्ना विश्वविद्यालय में पढ़ाना प्रारम्भ करना उन्हें गौरव की अनुभूति कराता था। राष्ट्रपति पद से मुक्त होने के उपरान्त राष्ट्रपति की बजाय कार्यरत प्रोफेसर कहलाने की डॉ. अब्दुल कलाम की इच्छा किसी भी श्रेष्ठ शिक्षक को शिक्षकत्व की महानता की अनुभूति करा सकती है। इस प्रकार अतीत से लेकर आज तक ऐसे हजारों शिक्षकों की महान परम्परा हमें राष्ट्र निर्माण के लिए प्रेरित करती है। आज भी अपने हृदय में राष्ट्र भाव की सदेच्छा रूपी अमृत कलश को धारण करने वाले अनेक ऐसे शिक्षक समाज जीवन में कार्य कर रहे हैं जो विद्यार्थियों के सत्व को जगाकर उनको यह सन्देश निरन्तर दे रहे हैं कि प्रतिस्पर्धा वर्तमान की मांग है इसलिए उससे मुख नहीं मोड़ सकते लेकिन दिशा बदल सकते हैं। प्रतियोगिता हो तो सही किन्तु औरों से नहीं स्वयं से। स्वयं की क्षमताओं से, स्वयं की पूर्णता को बाहर लाकर स्वयं के लिए रास्ता खोजना है। इस रास्ते में शत्रु कोई नहीं स्वस्थ प्रतिस्पर्धा है। अपने को शत-प्रतिशत लक्ष्योन्मुखी करना है, नियति मदद करेगी। यह स्वस्थ प्रतिस्पर्धा विद्यार्थी की स्वयं की क्षमताओं को जगायेगी, आत्मविश्वास पैदा करेगी। पंचकोषीय व्यक्तित्व गढ़ेगी। ऐसे पूर्ण संगठित व्यक्तित्व सम्पन्न विद्यार्थी अवश्यमेव भारत की भव्यता को सिद्ध करने में सक्षम होंगे। ❑

Nation Building and Teachers

Dr. T.S. Girishkumar

Professor of Philosophy (Rtd.) MSU Baroda (Gujarat)

Nation building, in any form, for anyone is always a collectively organised affair, in spite of the fact that Nation building shall distinctly vary from nation to nation, given their own space and time. Often times, the structure of nation building remains the same with minor variations, but shall indeed, differ seriously in content from nation to nation.

Social structure and institutions of societies

Societies have a structure and given institutions as built in, even without Louis Althusser speaking about social structure, social institutions or even state apparatus. Ideally, each individual member of the society occupies a distinct position in society; and an ideal society shall be the one in which each member occupying his right position or place from where he shall discharge his rightful duties meaningfully. In reality, this may not be the case with existential situations, but that becomes beside the point for now.

The dynamism with any society is its continuous flow through time in a forward manner. It is not necessary that societies should go forward in time on a routine and always. We have the Afghan society for the example, the reasons whatever may be goes back in time in many manners. Another dynamism with the societies come from the fact that societies are ever becoming a routine, that new members keep coming and old members keep going. The third kind of dynamism with the society shall be its ever-ongoing program of continuous induction trainings, which keeps going on rather spontaneously. New members are continuously being inducted into a given society through multiple stages, perhaps beginning with language, food, and other practices.

There shall be two sections of society in multiple forms, the trainers and the trainees of vari-

ties. The trainers here assume much serious importance in the sustenance of the society, and there shall be various kinds of trainers who does so through their very living within the society.

Teachers

Among all trainers, the role of teachers is very crucial. They are stationed in society to provide first hand trainings in the desired manner and this becomes their profession. Albeit it remains a fact that homes are always the first school in any individual's life, it is from the real teachers that systematic training gets imparted. It is also a fact that children spend more time with their teachers on a practical plain than time spent with families. Further, the teachers have a system of teaching, a pattern to follow as well as a testing mechanism. Here, it becomes needless to say that good teachers always go outside the given syllabi in their teaching to 'groom' citizens of tomorrow for the nation.

Some nations make it a point to train their new generations in the national way, but not all nations do that. Many nations, in their efforts, to become global and pleasing other powerful nations do not do these things in their projected fantasy of progression and becoming a step with some lofty ideals. It shall be here, that the next generation fails to come to grip with national ethos and values.

A question may be pertinent to many minds; why should one be national? Why should any nation share the same ethos and values and remain tightly united? My best answer is the last Sukta of the last Mandala of the Rg Veda, which says:

समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥
समानी व आकूतिः
समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो
यथा वः सुसहासति ॥

In a nutshell, the Rg Veda says that when we stand with one mind, one goal and together, we will go from strength to strength and to progress. When we remain united and strong, all other things shall automatically follow, no one shall overpower or dominate us, and we shall ever remain undisturbed and intact. And, this is how Bharat should exist.

The role of teachers in building Bharat

For Bharat, the role of teachers in nation building is easy and difficult at the same time. Primarily, the role of teachers in Bharat is to create archetype Nagariks of Bharat, and to this end, there are many ways. The task is easy, when the teachers depend on Bharatiya Sanskriti to educate children for tomorrow

through creating Sanskaris apart from corporately competing capable ones. To this, the first requirement shall be, that, the teachers themselves shall be Sanskaris, without which this becomes impossible. It is here, for Sanskari teachers that the task is very easy, or should the teacher have nothing much to do with Bharatiya Sanskriti, the task simply shall be difficult as well. It is here that Swami Vivekananda becomes inspiration to all teachers who wish to belong to Bharatiya Sanskriti.

The clarion call given by Swami Vivekananda to youth of Bharat at that time to be Swabhimani Bharatiyas is very significant. Indeed, there is no short cut to become Swabhimanis. It really a process. To become Swabhimanis, one has to first know as to upon what one can be Swabhimani Bharatiya. The Swabhimana of Bharatiyas depends on Bharatiya knowledge tradition, which is the Vedopanishadic knowledge tradition. The Vedas are essentially knowledge texts those studied and deciphered every aspect of knowledge and written them down through various texts. These texts are mostly available to all of us for verification as well. Further, as to the method through which the Acharyas obtained such knowledge, the text of Yoga Sutra gives explanation as Yogaj. One more thing, such

history and knowledge tradition of Bharat are well documented, through three dimensional carvings on granite stones, through out Bharat. Again, what one is immensely proud of is the Sanskriti of Bharat. Once a person gets some knowledge of these, it shall simply be automatic for one to become Swabhimanis. In other words, Bharatiya Swabhimana also depends on Vedopanishadic knowledge tradition on a final analysis, as Bharatiya Sanskriti is a manifestation of such knowledge traditions in time and space.

Among all trainers, the role of teachers is very crucial. They are stationed in society to provide first hand trainings in the desired manner and it also becomes their profession. Albeit it remains a fact that homes are always the first school in any individual's life, it is from the real teachers that systematic training gets imparted. It is also a fact that children spent more time with their teachers on a practical plain than time spent with families. Further, the teachers have a system of teaching, a pattern to follow as well as a testing mechanism.

Such shall be the things that teachers of Bharat are to teach along with material competitiveness of mundane living. One has to be materially competitive, and at the same time, one also has to be transcendently literate. This is what a teacher ought to achieve through teaching, and this shall really unite Bharat internally and like what the Rg Veda say, we shall go from strength to strength to become a meaningfully powerful Nation, which shall indeed, be "Viswaguru". ❑

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और शिक्षक की भूमिका

डॉ. ओ. पी. देवासी
सह आचार्य,
राजकीय महाविद्यालय,
रोहट, पाली (राज.)

भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली लॉर्ड मैकॉले की देन हैं जिसने 10 जून 1834 को गवर्नर जनरल की काउंसलिंग के कानूनी सदस्य के रूप में कार्य करना प्रारंभ किया था उस समय भारत में गवर्नर जनरल विलियम बैंटिक था उसने भारत में अंग्रेजी शिक्षा के लिए लोक शिक्षा समिति का गठन किया जिसका सभापति मैकाले को बनाया गया था जिसका उद्देश्य प्राच्यवादी (ओरिएंटल लिटरेचर) तथा पाश्चात्यवादी यहाँ (वेस्टरलिस्ट) विवाद पर मध्यस्थता करना था और इसी संदर्भ में अपना प्रसिद्ध स्मरणपत्र गवर्नर जनरल की परिषद् के समक्ष प्रस्तुत किया जिसको बैंटिक ने स्वीकार करते हुए अंग्रेजी शिक्षा अधिनियम 1835 पारित किया। इससे भारत में आधुनिक शिक्षा की नींव रखी गई। इसमें कहा गया कि सरकार शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी करे तथा इसके विकास के लिए कई प्राथमिक विद्यालयों के स्थान पर कुछ स्कूल तथा कॉलेज खोले जाएँ मैकॉले ने इसके तहत अधोगामी निस्यंदन का सिद्धांत दिया जिसके तहत भारत के उच्च तथा मध्यम वर्ग के एक छोटे से हिस्से को शिक्षित करना था जिससे एक ऐसा वर्ग तैयार हो जो रंग और खून से भारतीय हो लेकिन विचारों और नैतिकता में ब्रिटिश हो यह वर्ग सरकार व जनता के बीच एक कड़ी के रूप में काम करें और पाश्चात्य सभ्यता को देश पर थोपने का कार्य करे। भारत व भारतीय भाषाओं के प्रति यहाँ के निवासियों में हीन भावना का विकास करें ताकि भारतीय अपनी संस्कृति को त्यागकर अंग्रेजों की गुलामी आसानी से स्वीकार कर सकें। इस हेतु उसने सर्वप्रथम अंग्रेजी भाषा के शिक्षक तैयार करवाए जो स्कूलों में अंग्रेजी भाषा को पढ़ा सकें इस हेतु भारत में मिशनरी संस्थाएँ खोली गई जो धर्मांतरण के साथ पश्चिमी संस्कृति का समाज में प्रसार कर सकें तथा यह प्रवृत्ति वर्तमान में भी जारी है इसके अलावा उच्च शासक वर्ग के लिए मेयो कॉलेज जैसे स्कूल कॉलेज खोले जिसमें काले अंग्रेज पैदा किए गए जो अंग्रेजों के पिछलग्गु बन समाज को घृणा की दृष्टि से देखने लगे और धीरे-धीरे एक इनका अलग ही एलीट वर्ग बन गया। इस काल में शिक्षक की भूमिका एक दलाल की बन कर रह गई जो वेतन भोगी कर्मचारी के रूप में अंग्रेजों के उद्देश्यों को पूरा करता था और अपना भरण पोषण करने लगा।

स्कूल व कॉलेज काले अंग्रेजों को पैदा करने के कारखाने बन गए और उनके उत्पाद विश्व भर में पश्चिमी संस्कृति के वाहक बन गए और भारत इंडिया बन गया भारत में 19वीं शताब्दी आते-आते सरकारी कार्य का माध्यम अंग्रेजी भाषा में हो गया संस्कृत जो पूरे भारत में बोली

समाज में एक सुनामी की लहर उठी और उसने अंग्रेजी सरकार को भारत से बाहर कर दिया। इस कार्य में स्वामी विवेकानंद, विनोबा भावे, सी.बी. रमन, राधा कृष्णन टैगोर, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जैसे शिक्षकों ने रास्ट्रवाद की जो अलख शिक्षा के माध्यम से जगाई वह अद्वितीय है। इस समय देश आजाद हो गया किंतु इंडिया भारत नहीं हो सका उस समय एक मौका था जब हिंदी या संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाया जा सकता था भारत को एक राष्ट्र एक भाषा के रूप में बदला जा सकता था।

जाती थी उसके स्थान पर अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य रूप में पढ़ाया जाने लगा और शिक्षक अंग्रेजों का वेतन भोगी कर्मचारी बनकर पूरी ईमानदारी के साथ यह कार्य बड़े गर्व के साथ करने लगा। उसने अपना दर्जा गुरु के स्थान पर मास्टर या शिक्षक कर लिया था जो वेतन के बदले अंग्रेजी भाषा का प्रसार करने लगा। उसमें गुरुत्व क्षीण हो गया और वह मात्र शिक्षा विभाग का कर्मचारी बनकर रह गया। यह क्रम 1857 तक निर्बाध चलता रहा किंतु स्वाभिमान व देशप्रेम की ज्वाला राष्ट्रभक्त शिक्षकों के हृदय में विस्फोटक का रूप धारण कर चुकी थी।

शिक्षकों के अंदर राष्ट्र का गुरुत्व जागृत हो गया उन्होंने अपने अबोध बालकों के मन में राष्ट्र गौरव पुनः जगाना प्रारंभ किया और धीरे-धीरे अंग्रेजों का विरोध समाज के आमजन के दिमाग में घर कर गया और मंगल पांडेय, भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, वीर सावरकर जैसे वीर योद्धा समाज में पैदा होने लगे शिक्षक एकदम शांत व नित्य अपने उद्देश्यों में लगा रहा और क्रांतिकारियों की फौज हर वर्ग में पैदा होने लगी। अंग्रेजी सरकार को समझ में नहीं आया कि यह सब कैसे संभव हो रहा है। जब अंग्रेजी भाषा व दलालों की पूरी फौज होते हुए भी यह क्रांति कैसे संभव हुई यह उनके समझ से परे था किंतु शिक्षक ने अपना काम कर दिया। समाज में एक सुनामी की लहर उठी और उसने अंग्रेजी सरकार को भारत से बाहर कर दिया। इस कार्य में स्वामी विवेकानंद, विनोबा भावे, सी.बी. रमन, राधा कृष्णन टैगोर, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जैसे शिक्षकों ने राष्ट्रवाद की जो अलख शिक्षा के माध्यम से जगाई वह अद्वितीय है। इस समय देश आजाद हो गया किंतु इंडिया भारत नहीं हो सका। उस समय एक मौका था जब हिंदी या संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाया जा सकता था।

भारत को एक राष्ट्र एक भाषा के रूप में बदला जा सकता था। संस्कृत व भारत का महत्त्व पुनः स्थापित किया जा सकता था। किंतु देश के विभाजन के बाद भी तुष्टीकरण की नीति और अंग्रेजों की फूट डालो राज करो की नीति का अनुसरण सत्ता के लिए अनुकूल लगा इसलिए उसका समर्थन लंबे समय तक किया जाता रहा। मैकाले की नीति पुनः जीवित हो गई और अंग्रेजी का प्रभाव संस्कृति पर दिखाई देने लगा। शिक्षक पुनः वेतन भोगी कर्मचारी बन गया शिक्षा का पूरा अंग्रेजीकरण हो गया देश के सभी प्रतिष्ठित संस्थान अंग्रेजी माध्यम में बदल गए शिक्षक के पास मौलिकता नहीं रही वह मशीन बन गया किंतु इस व्यवस्था में भी उसने अपना कर्तव्य निर्वहन किया और देश की प्रतिभाओं को विश्व स्तर पर पहचान दिलाने में वह कामयाब रहा। उसी की बदौलत विश्व भर में कंपनियों के सीईओ भारतीय बनने लगे भारतीय छात्रों से विश्व भर के देश डरने लगे और अपने बच्चों को कहने लगे कि पढ़ो नहीं तो भारतीय आ जाएंगे।

यह एक शिक्षक की ही ताकत है देश में शिक्षा और शिक्षक का महत्त्व सत्ता के लिए कभी महत्त्वपूर्ण नहीं रहा। इस कारण, यह क्षेत्र हमेशा से उपेक्षित ही रहा देश में लोकतंत्र भीड़तंत्र में बदल गया। राष्ट्रवाद व शिक्षा गौण हो गई। सत्ता तक पहुँचने का रास्ता भीड़ से गुजरने लगा 70 वर्षों तक इसी नीति का अनुसरण किया जाने लगा शिक्षक को हाशिए पर डाल दिया गया। शिक्षक का आत्मसम्मान पुनः जागृत हुआ उसने राष्ट्रवाद को पुनर्जीवित करना चालू किया। जनता ने बदलाव किया और नई शिक्षा नीती 2020 जारी की गई। देश पुनः अपनी संस्कृति से जुड़ने लगा। मातृभाषा और भारत माता का गौरव पुनः लौटने की आशा जागृत हुई। शिक्षक में गुरुत्व का भाव जागृत होने लगा। पुनः भारत से पश्चिमी संस्कृति डरने लगी इंडिया पुनः भारत बनने लगा है शिक्षक सत्ता का पुनः मार्गदर्शक बनने लगा है। ❑

विचारधारात्मक परिवर्तन और शिक्षक

डॉ. चन्द्रवीर सिंह भाटी

सह आचार्य,
राजकीय महाविद्यालय,
ओसियां, जोधपुर (राज.)

विचाराधारा सामाजिक व राजनीतिक परिवर्तन का आधार नहीं हैं। विचाराधारा के प्रकीर्णन और प्रसरण में शिक्षकों ने ऐतिहासिक रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। चाणक्य, सुकरात, अरस्तू प्लेटो से लेकर कांट, ग्रीन, मारगेन्थाउ आदि सभी शिक्षक ही रहे हैं जिन्होंने विचारों का प्रणयन कर समाज को नवीन दिशा देने का प्रयत्न किया। प्लेटो के द्वारा दिये गये न्याय के सिद्धांत के 2500 वर्ष पश्चात् जॉन रॉल्स द्वारा प्रतिपादित 'न्याय का सिद्धांत' समाज की जटिल समस्याओं को सुलझाने का वैचारिक प्रयत्न था। शिकागो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मिल्टन फ्री डमैन द्वारा पूंजीवाद, बाजारवाद के पुनः स्थापित करने का प्रयत्न उदारवादी विचारधारा को नया वैचारिक धरातल प्रदान करने का प्रयत्न था। जॉन हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के प्रोफेसर फ्रांसिस फूकूयामा द्वारा 'इतिहास का अंत' की अवधारणा अमेरिकी उदारवादी व बाजारवादी विचारधारा को श्रेष्ठ व अनुकरणीय विचार के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न था। दूसरी तरफ हावर्ड के प्रोफेसर हर्बट मायूंजे, हेडिलबर्ग विश्व विद्यालय के प्रोफेसर जुर्गन हेबरमास, फ्रेंमफर्ट विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मैम्स होखाइमर ने मार्क्सवाद को 20 वीं सदी के पारिस्थितियों के अनुकूल स्थापित करने का प्रयत्न अपने विचारों के माध्यम से किया।

स्वतन्त्रता के पश्चात भारत के कई विश्वविद्यालयों विशेषकर जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के शिक्षकों ने मार्क्सवादी विचारधारा को बढ़ाने का भरसक प्रयत्न किया। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में रोमिला थापर, सुमित सरकार, अभिजीत सैन, जयती धोष आदि शिक्षकों की एकलम्बी श्रृंखला विगत 5 दशकों में पल्लवित हुई जिन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा को विकसित किया। जे.एन.यू.के इन्हीं शिक्षकों से पढ़े छात्रों ने राजनीति व शिक्षा क्षेत्र में मार्क्सवादी विचारधारा को आगे बढ़ाने का काम किया। राजनीति के क्षेत्र में सीताराम येचूरी, प्रकाश करात, वृंदा करात आदि भारत में साम्यवादी दल के प्रमुख नेता हैं। नेपाल के साम्यवादी दल के प्रमुख नेता बाबूराम भट्टाराई भी जे.एन.यू. के छात्र रहे हैं। जे.एन.यू. से निकले अनके शिक्षकों जो कालान्तर में देश के विभिन्न महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में लगे उन्होंने साम्यवादी विचारों का प्रसार देश भर के विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थानों, शोध व साहित्य संस्थानों में किया। साम्यवादी विचारधारा पर आधारित लेखन व साहित्य को प्रोत्साहित किया गया। भारत भूमि ने हर विचार, धर्म को विकसित होने का अवसर प्रदान किया और हर विचार व संस्कृति के श्रेष्ठ तत्त्वों को आत्मसात् करने का भी प्रयत्न किया। परन्तु

साम्यवादी विचारधारा के साथ समस्या यह थी कि यह सीधा भारतीय संस्कृति, परिवार व्यवस्था, नैतिक मूल्यों पर आघात करने लगी। अत: इस साम्यवादी विचार का विरोध स्वाभाविक रूप से राजनीतिक, सामाजिक व वैचारिक रूप से हुआ। मार्क्स के अनुसार परिवार व्यवस्था भी पूंजीवादी लक्षणों पर आधारित है। जिस प्रकार राज्य में सभी साधनों पर पूंजीवाद का एकाधिकार है, उसी प्रकार परिवार में पिता के सभी भौतिक साधनों का अधिकार होन के कारण सम्प्रभु बन जाता है। परिवार व्यवस्था महिला असमानता का आधार है। इसमें एक पदानुक्रम बन गया है जिसमें पिता सर्वोच्च है और महिला व बच्चे उसके अधीनस्थ है। परिवार के प्रति मार्क्स के ये विचार परम्परागत भारतीय परिवार व्यवस्था से मेल नहीं खाते थे जहाँ स्त्री को देवी मानकर पूजनीय भी माना जाता है। इसी प्रकार मार्क्सवाद धर्म को अफीम मानकर उसे समाप्त करने की बात करता है जबकि भारतीय जीवन व्यवस्था, सामाजिक, राजनीतिक प्रक्रिया सभी का आधार धर्म ही है। संभवत: मार्क्सवादी भी धर्म व सम्प्रदाय के अंतर को समझ नहीं पाये। भारत के साथ त्रासदी यह रही कि भारतीय शिक्षक व बुद्धिजीवी वर्ग ने बिना गूढ़ अध्ययन के विश्लेषण किये भारत को एक गलत दिशा में धकेल दिया। सभवत: भारतीय स्वतन्त्रता के कुछ दशक पूर्व और कुछ दशक पश्चात् साम्यवाद को सोवियत संघ और चीन में जो सफलताएँ मिली, उससे भारतीय बौद्धिक व शिक्षक वर्ग काफी प्रभावित हो गया और साम्यवादी विचारधारा का अंधानुगमन करने लगा। उससे भी बड़ी बिडंवना यह रही कि चीन द्वारा 1978 में आर्थिक उदारवाद अपनाये जाने, 1991 में सोवियत संघ के विघटन व भारत के आर्थिक संकट, पूर्वी यूरोप के एक-एक करके साम्यवादी सत्ताओं के ढ़हने के उपरांत भी भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग व शिक्षक वर्ग साम्यवाद के प्रति अंधभक्त बना रहा। परिणाम यह रहा कि चाणक्य जैसे शिक्षक जो राष्ट्र निर्माता रहे हैं, वहाँ ऐसे शिक्षक उत्पन्न हो गये जिन्होंने 'भारत तेरे टुकड़े होंगे......' के नारे लगाने वालों का समर्थन किया। वस्तुत: साम्यवादी विचारधारा राज्य के शोषण का साधन मानती है और राज्य को समाप्त करना चाहती है। राज्य को समाप्त करने का वैचारिक आधार ही साम्यवादी शिक्षकों को 'भारत राष्ट्र' के प्रति श्रद्धाभाव उत्पन्न करने से रोकता है। एक ऐसी विचारधारा जो न राष्ट्र को मानती है, न राज्य को, न धर्म को और न ही सांस्कृतिक मूल्यों को वह व्याज्य योग्य है।

दूसरी तरफ उदारवादी विचारधारा बाजारवाद, पूंजीवाद पर आधारित है इस विचारधारा ने शिक्षा को व्यवसाय बना दिया है और शिक्षा केवल नौकरी प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा भर बनकर रह गयी। शिक्षा अपने मूल उद्देश्यों चरित्र निर्माण, संस्कार प्रदान करने, सेवा परोपकार का भाव विकसित करने में विफल हो चुकी है। इन परिस्थितियों में भारतीय शिक्षा प्रणाली को भारतीय विचारों, मूल्यों पर आधारित करने की आवश्यकता है और इसमें शिक्षक प्रभावी भूमिका निभा सकते हैं। शिक्षकों का दायित्व है कि वे भारतीय विचारधारा पर आधारित शिक्षा प्रणाली विकसित करें जो छात्रों में चरित्र, संस्कार, राष्ट्रीयता की भावना विकसित कर सकें। शिक्षा वह है जो बालक के शारीरिक विकास से आरम्भ होकर, उसका मानसिक व बौद्धिक विकास करते हुए उसका आत्मिक विकास करे। बालक के परिवार के साथ एकात्मक भाव उत्पन्न कर उसको परमेश्वर का एकरूप होने को प्रेरित करे। इस संदर्भ में पं. दीन दयाल उपाध्याय की पंचकोशीय विचारधारा मार्ग दर्शक हो सकती है जो व्यक्ति को प्रकृति से जोड़ते हुए उसके समग्र विकास का आधार प्रदान करती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 समग्र और बहुविषयक शिक्षा पर ध्यान देती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के बिन्दु 11.8 के अनुसार "समग्र और बहुविषयक शिक्षा के विचार को धरातल पर लाने के लिए सभी उच्च शिक्षण संस्थाओं के लचीले और नवीन पाठ्यक्रम में केडिट आधारित पाठ्यक्रम और सामुदायिक जुड़ाव और सेवा, पर्यावरण, शिक्षा और मूल्य आधारित शिक्षा के क्षेत्र शामिल होंगे .... मूल्य आधारित शिक्षा में मानवीय, नैतिक, संवैधानिक तथा सार्वभौमिक मानवीय मूल्य जैसे सत्य, नेक आचरण, शांति, प्रेम, अंहिंसा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नागरिक मूल्य और जीवन कौशल, सेवा व सामुदायिक कार्यक्रमों में सहभागिता समग्र शिक्षा का अभिन्न अंग होगा।"

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 समग्र और बहुविषयक शिक्षा पर ध्यान देती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के बिन्दु 11.8 के अनुसार "समग्र और बहुविषयक शिक्षा के विचार को धरातल पर लाने के लिए सभी उच्च शिक्षण संस्थाओं के लचीले और नवीन पाठ्यक्रम में केडिट आधारित पाठ्यक्रम और सामुदायिक जुड़ाव और सेवा, पर्यावरण, शिक्षा और मूल्य आधारित शिक्षा के क्षेत्र शामिल होंगे .... मूल्य आधारित शिक्षा में मानवीय, नैतिक, संवैधानिक तथा सार्वभौमिक मानवीय मूल्य जैसे सत्य, नेक आचरण, शांति, प्रेम, अंहिंसा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नागरिक मूल्य और जीवन कौशल, सेवा व सामुदायिक कार्यक्रमों में सहभागिता समग्र शिक्षा का अभिन्न अंग होगा।" साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर्यावरण शिक्षा, वैश्विक नागरिक शिक्षा पर बल देती है ताकि एक शांतिपूर्ण समावेशी, सहिष्णु व सतत् समाज के निर्माण का लक्ष्य पूर्ण हो सके। इस लक्ष्य की पूर्ति में शिक्षकों की महती भूमिका आवश्यक है क्योंकि राष्ट्र विरोधी विचारों का उन्मूलन सुदृढ़ राष्ट्र निर्माण करने वाली विचारधारा से ही किया जा सकता है। ❑

शिक्षक बचपन से ही बालक के जीवन को सफल बनाने की आधारशिला रखते हैं। एक मजबूत नींव प्रदान करते हैं, जो कि आगे बढ़ने का सबंल प्रदान करती है। इसी नींव पर खड़े हो कर वे परिवार, समाज, देश एवं विश्व के निर्माता बनने का गौरव प्राप्त करते हैं। शिक्षकों के द्वारा ही हमें उद्देश्यपूर्ण शिक्षा मिलती है, जिससे एक सुन्दर एवं सभ्य समाज का निर्माण सभंव होता है। शिक्षकों से ही हमें वह सामाजिक एवं शक्षैणिक ज्ञान प्राप्त होता है, जो समाज का दिशा-बोध कराने में सहायक बनता है।

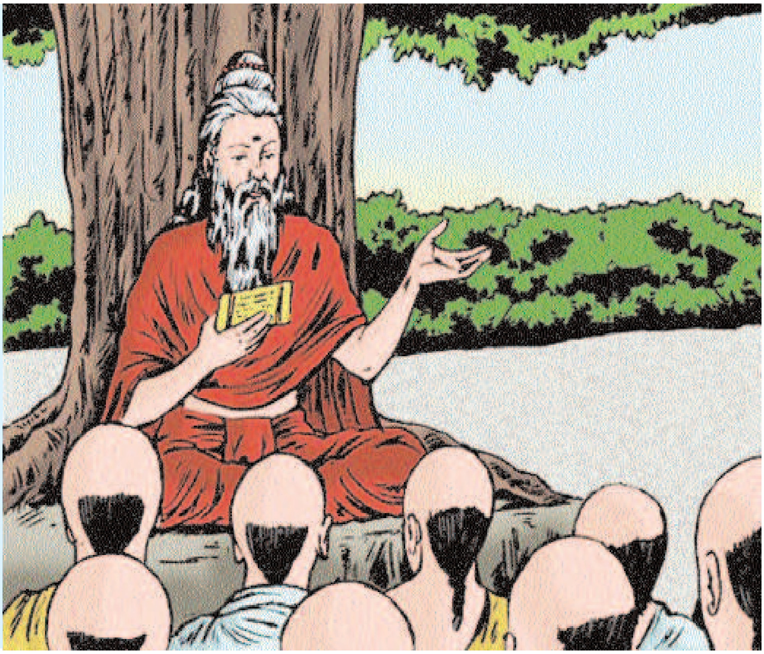

सामाजिक परिवर्तन में शिक्षक की भूमिका

प्रो. प्रकाश चंद्र अग्रवाल
प्राचार्य,
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान,
भुवनेश्वर (ओडिशा)

शिक्षक, शिक्षण प्रकिया का केंद्रीय बिंदु है। वह सामाजिक परिवर्तन का प्रभावी घटक है। शिक्षक के अभाव में सामाजिक परिवर्तन संभव नहीं है शिक्षक समाज की आवश्यकताओं को ज्ञात कर उसके अनुसार शिक्षा की दिशा का निर्धारण करता है। वर्तमान आधुनिक समय में भी शिक्षक ही सामाजिक परिवर्तन की धुरी है।

शिक्षक ही अपने विद्यार्थी का जीवन गढ़ता है और शिक्षक ही समाज की आधारशिला है। शिक्षक अपने जीवन के अंत तक मार्गदर्शक की भूमिका अदा करता है और समाज को राह दिखाता है, इसीलिए शिक्षक को समाज मे उच्च स्थान दिया जाता है।

समाज में शिक्षक की भूमिका को अत्यंत महत्त्वपूर्ण इसलिए माना गया है क्योंकि वह किसी भी शिक्षा पद्धति का केंद्रीय व्यक्ति तो होता ही है, अपने शिष्य को साधारण से असाधारण बनाकर, उसकी समझ एवं ज्ञान को विकसित कर, उसे प्रेरित करता है, उसे मार्गदर्शन प्रदान कर समाज के उन्नयन एवं प्रगति में सहायक बनाता है। यानी शिक्षक सामाजिक परिवर्तन का प्रतिनिधित्व कर सामाजिक बदलावों का वाहक बनता है।

"समाज में शिक्षक की भूमिका शिक्षा और ज्ञान प्रदाता की होती है। इस भूमिका में शिक्षक मानव मस्तिष्क को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार वह विद्यार्थियों व समाज को सही दिशा-बोध करवाता है।" सामाजिक बदलावों के वाहक के रूप में हमारे देश में शिक्षक की शीर्ष भूमिका पहले भी महत्त्वपूर्ण थी और आज भी है। यदि हम प्राचीन भारत पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि तत्कालीन भारत में वशिष्ठ, सन्दीपन, विश्वामित्र, द्रोणाचार्य जैसे आचार्यों ने सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। चाणक्य जैसे विद्वान ने तो चन्द्रगुप्त मौर्य को शासक बनाकर अखंड भारत के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ऐसे असाधारण कार्य को एक महान शिक्षक ही पूर्ण कर सकता है।

कुछ उतार-चढ़ाव के साथ शिक्षक की समाज में अग्रणी भूमिका आज भी है। आधुनिक काल में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, सावित्री बाई फुले, बाल गंगाधर तिलक, राजा राम मोहन राय, जगदीश चंद्र बसु जैसे शिक्षकों ने उच्च आदर्श प्रस्तुत किए। शिक्षा से हमें सही दिशा मिलती है और इस प्रकार शिक्षा समाज से अनेक प्रकार की बुराइयों, विसगंतियों आदि को मिटाने में सहायक बनती है।

विश्व के इतिहास को देखने से सभ्यता के निर्माण में उन महान आचार्यों एवं शिक्षाविदों का हाथ है, जो स्वयं विचार करने का सामर्थ्य रखते हैं, जो देश और काल की गहराइयों में प्रवेश करते हैं, उनके

रहस्यों का पता लगाते हैं और इस तरह से प्राप्त ज्ञान का उपयोग लोक-कल्याण के लिए करते हैं। समाज के लिए इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण शिक्षक की भूमिका और क्या हो सकती है। शिक्षक अपने शिष्यों को मात्र शिक्षा से सबंधित तथ्यों, सिद्धांतों, सूत्रों आदि को नहीं समझाता, बल्कि वह अपने शिष्यों को वैचारिक स्तर पर समृद्ध बनाकर सत्य के शोध हेतु प्रेरित करता है तथा उसे आगामी चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार भी करता है। शिक्षक हमें ज्ञान देकर शक्तिशाली तो बनाता ही है, वह हमें परिपूर्णता भी प्रदान करता है।

यह अकारण नहीं है कि महर्षि अरविंद ने शिक्षकों को राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली के रूप में अभिहित किया। शिक्षकों के संबंध में उनका यह विचार अनमोल है कि - ''शिक्षक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से सींचकर उन्हें निर्मित करते हैं।'' महर्षि अरविंद तो यह मानने में तनिक भी संकोच नहीं करते थे कि किसी राष्ट्र के वास्तविक निर्माता तो उस देश के शिक्षक ही होते हैं। स्पष्ट है कि शिक्षक न सिर्फ एक विकसित, समृद्ध एवं खुशहाल देश के निर्माण में अग्रणी भूमिका निभाते हैं, बल्कि विश्व निर्माण में भी उनकी भूमिका अहम होती है।

यह कहना असंगत न होगा कि शिक्षक, समाज के वास्तविक शिल्पकार होते हैं। जिस प्रकार एक शिल्पकार पत्थरों को तराश कर उन्हें सुन्दर आकृति का स्वरूप प्रदान करता है, ठीक उसी प्रकार एक शिक्षक अपने शिष्यों को गढ़ने का कार्य कर उन्हें एक अच्छा नागरिक बनाता है, जो कि समाज का निर्माण कर उसमें सकारात्मक बदलाव लाते हैं। सच तो यह है कि सुशिक्षित बच्चे विश्व के लिए प्रकाश पुंज की अवधारणा को साकार बनाते हैं। ये अपने समाज को तो प्रकाशवान बनाते ही हैं, सम्पूर्ण विश्व को भी रोशन करते हैं। ये समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप अपना योगदान सुनिश्चित कर 'समाज का प्रकाश' बनते हैं। शिक्षा रूपी सस्ंकार उन्हें विपत्तियों से बचाता है।

शिक्षक बचपन से ही बालक के जीवन को सफल बनाने की आधारशिला रखते हैं। एक मजबूत नींव प्रदान करते हैं, जो कि आगे बढ़ने का सबंल प्रदान करती है। इसी नींव पर खड़े हो कर वे परिवार, समाज, देश एवं विश्व के निर्माता बनने का गौरव प्राप्त करते हैं। शिक्षकों के द्वारा ही हमें उद्देश्यपूर्ण शिक्षा मिलती है, जिससे एक सुन्दर एवं सभ्य समाज का निर्माण सभंव होता है। शिक्षकों से ही हमें वह सामाजिक एवं शक्षैणिक ज्ञान प्राप्त होता है, जो समाज का दिशा-बोध कराने में सहायक बनता है। शिक्षकों से जहाँ हमें उच्च नैतिक मूल्यों को जीवन में उतारने की प्रेरणा मिलती है, वहीं भौतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकार की उद्देश्यपूर्ण एवं संतुलित शिक्षा मिलती है। इसी शिक्षा के बल पर विद्यार्थी एक अच्छा 'विश्व नागरिक' बनकर समाज के सामने आता है। शिक्षक द्वारा ही शिष्यों में करुणा, प्रेम एवं श्रेष्ठ परंपराओं का विकास होता है और इससे शिक्षा को सार्थकता मिलती है, क्योंकि यही वे अवयव हैं, जो सार्थक शिक्षा के लिए आवश्यक माने जाते हैं। शिक्षा की इन्हीं विशेषताओं से बच्चों को मन, वचन और कर्म के द्वारा समाज में सकारात्मक बदलाव लाने की अद्‌भुत शक्ति मिलती है। ''एक सुन्दर, सुसभ्य एवं सुसंस्कारित समाज की आधारशिला रखने वाले शिक्षक निस्संदेह आदर एवं आस्था के पात्र हैं।'' इस तरह देखें तो दो स्तरों पर शिक्षकों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है। वे अपने शिष्यों को ज्ञान, विवेक एवं रोजगारपरक शिक्षा देकर उन्हें आत्मनिर्भर तो बनाते ही हैं। साथ ही यदि शिक्षक अपनी भूमिका का सही ढंग से निर्वहन न करे, तो हमारा समाज अज्ञानता के अंधकार से आच्छादित हो जाए तथा समाज में विसगंतियां और विद्रूपताएँ बढ़ने लगें। शिक्षा से ही शिक्षक अपने शिष्यों में उस विवेक को विकसित करता है, जो उसे सही निर्णय लेने में सहायता प्रदान करता है। सच तो यह है कि शिक्षकों के श्रेष्ठ मार्गदर्शन के द्वारा ही धरती पर ईश्वरीय सभ्यता की स्थापना सभंव है। यही कारण है कि हमारी - सनातनी संस्कृति में गुरु को गोविन्द से श्रेष्ठ माना जाता है। एक आदर्श शिक्षक नमन और श्रद्धा का पात्र होता है।

शिक्षा जिस प्रकार सामाजिक परिवर्तन लाती है, ठीक उसी प्रकार शिक्षक भी सामाजिक परिवर्तन को संभव बनाने हेतु महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षक एक प्रकार से वर्तमान तथा भावी समाज को नेतृत्व प्रदान करता है, फलतः वह अपने आचार-विचार तथा क्रिया-कलापों से सामाजिक परिवर्तन की गति को तीव्रता तथा दिशा प्रदान करता है। शिक्षक की सामाजिक परिवर्तन लाने से सम्बन्धित कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, यह प्राचीन समय के गुरुओं के प्रभाव से स्पष्ट हो जाता है। भारत के प्राचीन कालीन आश्रमों के गुरु, नालन्दा, तक्षशिला जैसे विश्वविख्यात विश्वविद्यालयों के आचार्य तथा पश्चिमी देशों के अरस्तु, प्लेटो जैसे महान दार्शनिकों ने सामाजिक परिवर्तन लाने में महान भूमिका निभाई। आज भी सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षक की भूमिका कम नहीं हुई है और आज भी शिक्षक को समाज निर्माता तथा समाज का मार्गदर्शक माना जाता है। आज के सभी शिक्षा शास्त्री स्वीकार करते हैं कि बालक के व्यक्तित्व पर शिक्षक के व्यक्तित्व की अमिट छाप होती है। जैसा शिक्षक होता है, उसकी सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक विचारधाराएँ बालक या तो अपना लेता है अथवा उनसे उल्लेखनीय रूप से प्रभावित होता है।

हम छोटे-छोटे बालकों को नित्य ही अपने अध्यापक का अनुकरण करते देखते हैं। बड़ा हो कर वही बालक अध्यापक की बड़ी-बड़ी बातों का अनुकरण करने लगता है। शिक्षक बालकों को अपने विचारों, कर्मों व आदर्शों से प्रभावित कर सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। इस प्रकार, शिक्षक सामजिक परिवर्तन का सूत्रधार है। ❑

समाज परिवर्तन में शिक्षक की भूमिका

डॉ. ओम प्रकाश पारीक

विभागाध्यक्ष संस्कृत,
एस.आर.के. पाटनी राजकीय
स्नातकोत्तर महाविद्यालय
किशनगढ़, अजमेर (राज.)

आज महर्षि वाल्मीकि स्नान के लिए तमसा नदी की ओर जा रहे हैं तो सब कुछ पूर्ववत प्रतिदिन की भाँति ही है किन्तु एक करुण विलाप का क्रन्दन सुनकर उनके पाँव ठिठक जाते हैं। इस प्रकार के ज्ञानी महर्षि जो परमात्म तत्त्व को जान गये हैं उन्हें ये सांसारिक क्रन्दन प्रभावित कर रहे हैं और वे शोकग्रस्त हो उठते हैं। सहसा उनकी वाणी से एक श्लोक निकलता है जो अन्याय और न्याय, पाप और पुण्य को विभक्त करते हुये न्याय और पुण्य को लोक में पुष्ट करता है –

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

हे निषाद (शिकारी) तुम सैंकड़ों वर्षों तक भी प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं करोगे क्योंकि तुमने प्रेम संलग्न चकवे के जोड़े में से एक को मार दिया है। यहाँ वाल्मीकि शिक्षक हैं, शिकारी के बहाने से सम्पूर्ण लोक शिष्य है। अर्थात् समाज के लिये संदेश है, अन्याय और अत्याचार को पहचानकर संवेदनशील हो उचित उपचार करना शिक्षा है और प्रकृत्ति अर्थात् संपूर्ण पर्यावरण ही शिक्षालय है। और इन्हीं शैक्षिक तत्त्वों पर टिकी रामायण आज तक जन जन को शिक्षित कर रही है और करती रहेगी।

यावद् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।

अर्थात् जब तक पर्वत, नदियाँ, इस पृथ्वी पर रहेंगे तब तक रामायण कथा इस संसार में फैलती रहेगी। वाल्मीकि ऐसे योग्य शिक्षक हैं जो कि विभिन्न शास्त्रों के ज्ञाता ही नहीं हैं अपितु निर्मल और परपीड़ा को आत्मवत् समझने वाले मन के अभ्यास सिद्ध हैं। ऐसी क्रिया वाले हैं जो अन्याय का उपचार ही नहीं करती अपितु समाज को शिक्षित भी करती है ऐसे ज्ञान से ज्ञानी हुये हैं जो कि तप से प्राप्त हुआ अनुभव से प्राप्त हुआ है केवल औपचारिक और पुस्तकीय नहीं है हमारा शिक्षालय केवल चारदीवारी के भीतर नहीं अपितु सम्पूर्ण प्रकृति, संपूर्ण समाज और सृष्टि है यहाँ उनका अन्त:करण सीमाओं, जड़ताओं से घिरा नहीं है अपितु अन्त:करण विस्तारित है और चेतनता से युक्त है। शिक्षा का उद्देश्य सीमाओं और उलझनों से व्यावहारिक ज्ञान लेते हुये स्वतंत्र व्यवहार सीखना है क्योंकि स्वतंत्रता में विवेक और आनन्द छिपा है। 'मन एवं मनुष्याणां कारणं बान्धभोक्षयो:' मन ही मनुष्यों के बन्धन और स्वतंत्रता का कारण है। इसलिए मन को स्वतंत्रता का अभ्यासी बनाना आवश्यक है यह केवल पुस्तकों से नहीं होता अपितु उदाहरण और आदर्श स्थापना और व्यवहार से होता है। विद्या और शिक्षा भी वही है जो मानव को पराधीनताओं से दूर कर स्वतंत्र करती हो। पराधीनता और उलझनें जीव जगत् समाज में आने वाली नई चुनौतियों के आगे सिर

झुकाना है और उनको स्वीकार करके सत्यं शिवं सुन्दरं की ओर बढ़ना स्वतंत्रता है। शिष्य का अन्तःकरण इसे ग्रहण कर व्यवहार में ला सके इस प्रकार के वास्तविक अनुभवों से सत्य और न्याय के प्रति शिष्य का जिज्ञासु होना तथा क्रियात्मक व्यवहार के लिए तत्पर होना ही शिक्षक की योग्यता अथवा पात्रता है। इससे हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि अन्तःकरण के सकारात्मक प्रशिक्षण की शिक्षा, क्रिया और व्यवहार की शिक्षा, प्रकृति से शिक्षा, चेतनता के अनुभव की शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है यह सामाजिक व्यवहार के विषयों में आजीविका और कौशल के विषयों में, सत्य, आध्यात्मिकता, विवेक से मिलने वाले और आनन्द के विषय में प्रतिफलित रहनी चाहिये। इस प्रकार की शिक्षा युगानुकूल शाश्वत आनन्ददायक समाज का निर्माण करने में सक्षम है।

सत्य के व्यवहार से भ्रामक धारणायें दूर होती हैं जो कि मानव जीवन के कष्टों को दूर करने हेतु आवश्यक हैं। सत्य यह है कि जो सुविधा आपको सुख प्रदान कर रही है उसमें भ्रामकता कितनी मात्रा में है। यह प्रत्यक्ष सुख कहीं अप्रत्यक्ष भयंकर दुःखों का आमंत्रण तो नहीं है। प्रकृति स्वभाव को भी कहते हैं। अतः दृश्यमान प्रकृति का भी एक स्वभाव है। भूमि, जल, वायु, अग्नि और आकाश की स्वाभाविक, स्थितियों से सृष्टि की स्थिति है। इसी प्रकार मानव की स्वाभाविक स्थितियों से स्वास्थ्य की स्थिति होती है। इनमें अस्वाभाविकता से विकृति आती है परिणामतः क्लेश और दुःख प्राप्त होते हैं। मनुष्य की एक आयु है और प्रत्येक आयु के स्तर की उसकी क्षमतायें और व्यवहार है। प्रकृति जो दृश्यमान है उसकी भी क्षमतायें और उसकी व्यावहारिकतायें हैं। अतः मनुष्य की आयु, क्षमताओं और व्यवहार को प्रकृति की आयु क्षमतायें और व्यवहार से अनुकूलता बनी रहनी चाहिये। अगर इसमें प्रतिकूलता होती है तो मनुष्य दृश्यमान प्रकृत्ति को विकृत करता है और विकृत प्रकृति मनुष्य को उपकृत करने के स्थान पर अपकृत करने लगती है। अतः सुविधाओं का मनुष्य जीवन के सत्य और स्वभाव के साथ तालमेल होना आवश्यक है। सुविधा प्रकृति प्रदत्त पदार्थों से तैयार की जाती है उसकी एक सीमा है। प्रकृति हमारे लिए अनुकूल रहे इसलिए उस पर सुविधाओं का कितनी मात्रा तक बोझ डाल सकते हैं तथा इस बोझ के पुनर्भरण की क्या व्यावहारिकतायें होगी यह संतुलन सिखाना शिक्षा का कार्य है। और इस हेतु सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन की अपेक्षा है जो शिक्षक के द्वारा संभाव्य है।

हम स्वस्थ रहें विवेकी और आनन्दित रहें। इसके लिए अस्तित्व की प्राकृतिक आपदाओं, दुर्घटनाओं, रोगों से रक्षा होनी चाहिये। प्रकृत्ति का प्रकोप न्यून हो और होने पर उससे बचाव और उपचार का प्रशिक्षण हो। आवश्यकताओं, सुविधाओं, सुख और आनन्द की परस्पर निर्भरता का आकलन करते हुये उसमें समायोजन और संतुलन का प्रशिक्षण भी शिक्षा के द्वारा समाज को सकारात्मक स्थिरता प्रदान करता है।

वाल्मीकि ऐसे योग्य शिक्षक हैं जो कि विभिन्न शास्त्रों के ज्ञाता ही नहीं हैं अपितु निर्मल और परपीड़ा को आत्मवत् समझने वाले मन के अभ्यास सिद्ध हैं। ऐसी क्रिया वाले हैं जो अन्याय का उपचार ही नहीं करती अपितु समाज को शिक्षित भी करती है ऐसे ज्ञान से ज्ञानी हुये हैं जो कि तप से प्राप्त हुआ अनुभव से प्राप्त हुआ है केवल औपचारिक और पुस्तकीय नहीं है हमारा शिक्षालय केवल चारदीवारी के भीतर नहीं अपितु सम्पूर्ण प्रकृति, संपूर्ण समाज और सृष्टि है यहाँ उनका अन्तःकरण सीमाओं, जड़ताओं से घिरा नहीं है अपितु अन्तःकरण विस्तारित है और चेतनता से युक्त है। शिक्षा का उद्देश्य सीमाओं और उलझनों से व्यावहारिक ज्ञान लेते हुये स्वतंत्र व्यवहार सीखना है क्योंकि स्वतंत्रता में विवेक और आनन्द छिपा है।

जीवन यापन करने की आदतों व स्वभाव का निर्माण धर्म के उचित संस्कार से होगा तो जीवन में सार्थकता आयेगी। आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्, जो स्वयं को अच्छा नहीं लगे वह व्यवहार दूसरों से नहीं करना चाहिए।

महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्रम् नाटक में कहा है –

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापिकाव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते
मूढ़ः परप्रत्ययनेय बुद्धिः।।

अर्थात् न पुराना होने से सब कुछ अच्छा ही होता है और न ही नया होने से सब कुछ बेकार ही है सन्त लोग तो दोनों का परीक्षण करके निर्णय लेते हैं कि क्या छोड़ना चाहिए और क्या अपनाना चाहिए। युगानुकूल परिवर्तनों को शिक्षक अपनी जागरूकता के साथ देखता है और इन परिवर्तनों के दीर्घकालीन प्रभावों की परीक्षा करता है फिर अपेक्षित परिवर्तनों को अनुकूल दिशा प्रदान करना तथा अनपेक्षित परिवर्तनों से समाज के मूल की रक्षा करना यह शिक्षा द्वारा शिक्षक ही करता है। वैश्विक प्रगति और परिवर्तन सर्वदा नीतिगत एवं सुस्थिर मानसिकता की देन ही होते हैं यह आवश्यक नहीं अनेक बार नीतियाँ प्रयोग के तौर पर लागू की जाती हैं पर उनके दुष्प्रभावों को बहुत सी वैयक्तिक, राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाओं के रूप में समाज सहन करता है। शिक्षक अपने अनुभव, ज्ञान और जागरूकता से अपने पाठ्यक्रम में बदलाव एवं उचित समाज हित के लिए नीतिनिर्माताओं को दुष्प्रभावों के प्रति सावचेत कर सकता है।

शिक्षक और समाज परस्पर ही मूल्यन एवं अवमूल्यन को प्राप्त होते हैं। समाज में आने वाली बुराइयाँ कहीं न कहीं शिक्षा, और संस्कार की ही कमजोरी माने जाते हैं और उन बुराइयों से शिक्षक भी अपने को अछूता नहीं रख पाता। बुराइयों

से अपने को अप्रभावित रखते हुये समाज को बुराइयों से बचाना शिक्षक का शिक्षकत्व और महनीय उत्तरदायितव है। तभी वह सामाजिक परिवर्तनों को उचित दिशा दे सकता है।

समाज में प्रभाववान की बात मानी जाती है यह बात भी सही है कि शिक्षक की प्रभावशीलता उसके ज्ञान उसकी शिक्षण प्रतिबद्धता एवं त्याग से आँकी जाती है और रहेगी। इसलिए समाज में शिक्षक को बहुत ऊँचा दर्जा भी दिया गया है। उसे गुरु माना जाता है ओर गोविन्द ने भी गुरु को ही श्रेष्ठ बताया है। शिक्षक का शिक्षकोचित तप और अनुभव ज्यों-ज्यों बढता है वह मान्य बनता जाता है। सम्राट चन्द्रगुप्त था किन्तु एक झोंपड़ी में रहने वाला गुरु और शिक्षक चाणक्य की नीतियाँ ही राज्य संचालन करती हैं। चाणक्य के इतना प्रभावशाली होते हुये भी वह किस प्रकार की सादगी में आनन्द लेते थे। यह दृष्टव्य है -

कहुँ परे गोमय शुष्क,
कहुँ सिल परी शोभा दे रही
कहुँ तिल, कहुँ जब रासि लागी
बटुन जो भिच्छा लही
कहुँ कुस परे, कहुँ समिद्य
सूखत भारसों ताके नयो
यह लखौ छप्पर महा
जरजर होई कैसो झुक गयो।

(मुद्रा राक्षस संस्कृत/विशाखदत्त)
अनुवादक-(भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र)

अर्थात् कहीं सूखे गोबर के उपले, कहीं हींगोट तोड़ने की सिला, कहीं बटुकों द्वारा लाई भिक्षा का ढेर, कहीं यज्ञ के लिए कुश और समिधा और यह उनके घर का छप्पर भी पुराना जरजर होकर झुक गया।

जिस राजर्षि-चक्रवर्ती सम्राट दुष्यन्त को देवता भी अपनी सहायता के लिए बुलाते हैं वह एक शिक्षक और तपस्वी कण्व के आश्रम में सामान्य व्यक्ति की भांति प्रवेश करते हैं।

विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम।

गुरुकुल में विनम्रवेश में प्रवेश करना चाहिए इसलिए राजमुकुट और आभूषण जो कि विशिष्ट बनाते हैं इन्हें उतार देना चाहिए। इस प्रकार दुष्यन्त सामान्य वेश में प्रवेश करते हैं। यह है शिक्षक की प्रभावशीलता।

वास्तव में समाज हमें दिखता मूर्त है पर वह होता है अमूर्त अर्थात् उसमें होने वाले परस्पर सहसम्बन्ध चाहे वे चेतन के साथ या भौतिक जड़ पदार्थों के साथ हो समाज की सकारात्मक और नकारात्मक दिशा तय करने वाले होते हैं। परस्पर मनुष्यों की अन्तःक्रिया अमूर्त होते हुये भी समाज को एक आकार प्रदान करती है। आज भौतिक सुख-सुविधायें जहाँ समाज को जीवन यापन हेतु सुख-सुविधायें प्रदान कर रही हैं वहीं उनके विषय में गलत समझ समाज को दीर्घकालीन दुःखों का आमंत्रण देती है। सामाजिक प्रतिष्ठा का दिखावापन अपने भयावह स्तर तक पहुँच रहा है। सहनशक्ति के सकारात्मक पक्ष का ह्रास हुआ है। समाज में आर्थिक विषमता व्याप्त है। इसके साथ राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाओं के कारण जातिवाद को भी अत्यधिक बढ़ावा मिला है और भौतिक सुख-सुविधाओं से उन्नत समाज का भी खुशी का स्तर गिरता जा रहा है। समाज में सामान्य व्यक्ति के अच्छे और उत्कृष्ट कार्यों को प्रोत्साहन नहीं मिलता लेकिन जोड़-तोड़ और पहुँच के कारण कम गुणात्मकता वाले कार्य भी प्रोत्साहन को पा जाते हैं। यह सब कुछ सामाजिक मनोवृत्ति वहाँ के सद्‌भाव और जीवन दर्शन की सही सही समझ न होने के कारण हुआ है। महाराज भर्तहरि ने कहा है हम अच्छे की भी प्रसंशा करने से बचते हैं।

परगुणापरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं।
निज दि विकसन्ति सन्तिसन्तः कियन्तः।

अर्थात् दूसरे के थोड़े भी गुणों को पर्वत के समान करके अपने ह्रदय में प्रसन्न होने वाले सन्त (सज्जन) कितने हैं अर्थात् बहुत ही थोड़े रह गये हैं।

इन सब बातों को शिक्षक एक प्रभावशाली रूप से सकारातमक दिशा देने में समर्थ हैं। और उसका माध्यम उसके द्वारा दी जाने वाली शिक्षा और उसका अनुकरणीय आचरण ही मुख्य है। विद्यार्थियों के कच्चे मानस पर वह अच्छे प्रभावी और टिकाऊ नैतिकमूल्यों के चित्र खींच सकता है। जैसे-जैसे विद्यार्थियों का दृष्टिकोण बदलेगा वैसे-वैसे नये सामाजिक सकारात्मक आयामों का विकास होगा। इस प्रवृत्ति को सरकारी नीतिगत प्रोत्साहन और सामाजिक सराहना तीव्रता प्रदान कर सकती है। बहुत सी सामाजिक रूढ़ियाँ अब भी अशिक्षा और संस्कारहीनता के कारण दिखलाई देती है तो बहुत सी अच्छी परम्पराएँ पाश्चात्य भौतिक आकर्षण के प्रभाव में लुप्त भी हो गयी हैं। इस औचित्य और अनौचित्य का अन्तर कर औचित्य को बढ़ावा हमारे एक दूसरे के साथ किया जाने वाला परस्पर व्यवहार दे सकता है और व्यवहारों में परिपक्वता शिक्षा और संस्कार से आती है।

अनौचित्याद् ऋते नान्यद्
रसभङ्गस्य कारणम्।
औचित्योपनिबन्धस्तु
रसस्योपनिषत्परा।।

अनुचित के अलावा कोई भी आनन्द को बिगाड़ने का कारण नहीं है। और औचित्य का पालन ही आनन्द का रहस्य है। इस प्रकार के आनन्द के नाशक अनौचित्य तथा आनन्द के कारक औचित्य की समाज में स्थापना गुरु ही कर सकता है। प्रारम्भिक गरु परम्परा से लेकर आज के आधुनिक युग तक समाज में अपेक्षित परिवर्तनों में शिक्षक की भूमिका रही है। पर आज भी आशा उसी से अधिक की जाती है। अतः इसके अनुकूल मनोवृत्ति और वातावरण तथा नीतियाों से जब हम समाज में अपेक्षित परिवर्तन को दिशा देने का कार्य करेंगे तो एक उन्नत, खुशहाल, समाज का स्वरूप स्थायित्व को प्राप्त करेगा। ❑

The Role of teacher in social change

Dr. P. C. Jain

Guest faculty,
University Commerce
College, Jaipur (Raj.)

Teacher is the central figure in any formal education system. In the present global scenario the teacher should know well the needs of the society and the nature and direction of social change. Change is a natural and inevitable part of life in every society. The teacher, through his multifarious role and activities, can play a vital role in bringing up relevant and powerful social change.

Teacher is designed as a key factor and powerful agent of social change. Social changes have an enormous impact on the education system. Changes in society and the rapid technological development in the recent years have necessitated the reforms of the educational system. The social role of teachers as well as their responsibilities and obligations have significantly altered. In the present global scenario, the teachers should know well the needs of the society and the nature and direction of social change.

The term social change is used to indicate the changes that take place in human interactions and interrelations. Society is a web of social relationships and hence social change means change in the system of social relationships. The International Encyclopedia of Social Sciences looks at social change as the change in the social structure or in the pattern of action and interaction in societies. Alteration may occur in norms, cultural products, and in symbols of a society. Social change can vary in its scope and speed. Change can take a cyclical pattern. It can also be revolutionary. Change may include continuous process like specialization, bureaucratization and also include discontinuous process such as particular technical or social invention which appears at some point of

time. Change may influence many aspects of a society and disrupt the whole social system. In short, change is a natural, inevitable part of life in every society.

As far as relationship between social change and education is concerned, it may be said that both are closely related and affect each other to a large extent. In fact, education plays a vital role in maintaining and changing different aspects of the social system.

The role of teacher has always been regarded as powerful agent of change in any society. They are the central figure not only in any formal education system but also in bringing up effective social change. Any social change without teacher is a mere figure of imagination. Regarding teacher's role the following points need special mention.

1. Teachers can construct active learning opportunities where students can be fully engaged with the material and play with ideas without being reprimanded for going too far of the field.

2. Teacher can teach students how to think instead of teaching them what to think.

The term social change is used to indicate the changes that take place in human interactions and interrelations. Society is a web of social relationships and hence social change means change in the system of social relationships. The International Encyclopedia of Social Sciences looks at social change as the change in the social structure or in the pattern of action and interaction in societies. Alteration may occur in norms, cultural products, and symbols in a society. Social change can vary in its scope and speed. Change can take a cyclical pattern. It can also be revolutionary.

3. Teacher can prepare students to expect the need for change and to believe in their own ability to take positive steps for the upliftment of society.

4. Teacher can make classroom processes democratic to establish the idea that if we actively participate in our communities, we can help, make decisions about how they function.

5. Teacher can facilitate discussion among teachers as a group, starting with students about the decisions, they can make to drive social change.

In short, by sharing their knowledge and areas of expertise with the world, teachers can contribute to the improvement of a society or community. They are so vital in teaching various courses and serving as an example, motivation, and coach to others that they can carry on doing so outside of the classroom. ❑

वर्तमान में शिक्षक की वैचारिक स्वतंत्रता का महत्त्व

डॉ. शिवशरण कौशिक
अध्यक्ष एवं सह आचार्य,
हिंदी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
राजगढ़ (अलवर)

भारत की प्राचीनतम शिक्षा व्यवस्था से ही शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है। शिक्षक ही वह व्यक्ति है जो हर युग में समाज को, युवा पीढ़ी को तथा नागरिकों को सही दिशाबोध करवाता आया है। वह विभिन्न क्षेत्रों के शोध एवं अनुसंधान के उपरांत, ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों की खोज के बाद शासन और समाज का मार्गदर्शन करता आया है। दुनिया के महानतम देशों में जब सांस्कृतिक क्षरण होता है या प्रकारांतर से दूसरी सभ्यताओं के साम्राज्यवादी शासक नियंत्रण कर रहे होते हैं तब-तब राष्ट्रीय अस्मिता की संरक्षा-सुरक्षा का दायित्व का शिक्षकों ने ही निर्वहन किया है।

भारत में अनादिकाल से ही महान शिक्षकों की एक सुदीर्घ परंपरा रही है, आचार्य चाणक्य, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, समर्थ गुरु रामदास, स्वामी विवेकानंद, पं. मदन मोहन मालवीय, विनोबा भावे, सर सी. वी. रमन, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, रविंद्र नाथ टैगोर जैसे अनेक शिक्षकों ने भारत की तत्कालीन व्यवस्था को बदल कर समुचित दिशा में ले जाने के लिए अपना सर्वस्व लगाया था। भारत के स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व भी कमोबेश शिक्षकों के ही हाथों में रहा। परंतु इन सारे उदाहरणों तथा घटनाओं के मध्य शिक्षक के विचार स्वातंत्र्य का बहुत बड़ा आधार था जो किसी भी कालखंड में, किसी भी परिस्थिति में कमतर नहीं हो सकता।

शिक्षक की मौलिकता ही एक नव-चेतना संपन्न समाज के निर्माण तथा उसके विकास में नेतृत्वकारी भूमिका निभा सकती है। शिक्षक ही अपने देश के विद्यार्थियों की प्रज्ञा और चेतना को सही मार्ग दिखाता है। उसे प्रश्नाकुल करते हुए उनके समाधान खोजने में सहायता करता है। इन दोनों ही प्रक्रियाओं में शिक्षक स्वयं भी स्वतंत्रता पूर्वक सोचता है तथा अपने शिक्षार्थी वर्ग को भी स्वतंत्रता से विचार करने के लिए प्रोत्साहित-प्रेरित करता है।

आचार्य चाणक्य के गुरुकुल से लेकर आज के डिजिटल समय तक सदैव शिक्षक ही विचार स्वातंत्र्य के आधार पर विद्यार्थियों का मार्ग प्रशस्त करता आया है। ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षक को सदैव अद्यतन रहने की चुनौती तो सर्वदा आवश्यक है ही, किंतु वह विद्यार्थियों को भी पूर्ण दक्षता-क्षमता तथा परिश्रम के साथ ज्ञान के नए-नए तथ्यों से अवगत करवाता रहे, यह भी आवश्यक है। शिक्षक ही एकमात्र ऐसा सजीव यंत्र है जो भावी पीढ़ी की जाग्रत मशीनें तैयार करता है।

आज के शिक्षक अर्थात् अध्यापकों से यह आशा की जाती है कि वे सदैव ज्ञान-विज्ञान व प्रौद्योगिकी से मानव समाज के जीवन स्तर में हो रही निरंतर प्रगति की ओर विद्यार्थियों का ध्यान आकृष्ट करते

हुए उनमें उपर्युक्त अभिवृत्ति विकसित करने तथा जीवन का एक समग्र दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता प्रदान करे। इसके लिए उन्हें उत्प्रेरित करे जिससे नवयुवकों में बढ़ रहे असंतोष और हिंसात्मक प्रवृत्ति पर अंकुश लग सके। इसमें यह आवश्यक है कि शिक्षक स्वयं अनुशासित, आदर्श जीवन जीने वाले तथा विद्यार्थी समाज को अपने कार्य एवं व्यवहार से प्रभावित करने वाले व्यक्ति के रूप में अपनी पहचान बना सकें। वह अपने विद्यार्थियों में सृजनात्मक, सकारात्मक तथा व्यावहारिक जीवन शैली के प्रति उपर्युक्त दृष्टिकोण विकसित करते हुए उनसे व्यक्तिगत व्यवहार निर्देशन में किसी प्रकार का अंतराल अथवा दूरी न बनाए।

वर्तमान में शिक्षक और शिक्षार्थी के मध्य की दूरी कम हुई है इसका कारण यह है कि विद्यार्थी के पास शिक्षक के अतिरिक्त ज्ञान प्राप्ति अथवा सूचना प्राप्ति के दूसरे अनेक साधन भी उपलब्ध हुए हैं। ऐसी स्थिति में विद्यार्थी की आवश्यकताओं में शिक्षक की भूमिका और अधिक बढ़ जाती है। एक तरफ तो वह स्वयं को अपने ज्ञान, शोध, अनुसंधान, चिंतन मनन से अद्यतन करे और दूसरी ओर अपने व्यवहार से विद्यार्थियों के बीच स्वस्थ संप्रेषण की क्षमता विकसित करे। साथ ही विद्यार्थी किस प्रकार का ज्ञान ग्रहण कर रहे हैं इस पर भी वह अपनी दृष्टि बनाए रखे। आज कंप्यूटर युग में विभिन्न देशों की शिक्षा व्यवस्था तथा ज्ञान के क्षेत्रों की पाठ्यसामग्री विद्यार्थियों को तकनीक के माध्यम से सीधे भी उपलब्ध हो रही है जिससे क्षमतावान विद्यार्थी और अधिक सजग हुए हैं। यद्यपि ऐसी स्थिति में भी शिक्षक अपने दर्शन-बोध से शिक्षार्थी को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता ही है। वर्तमान युग में इंटरनेट के प्रयोग के कारण शिक्षक की भूमिका पूरी तरह बदल गई है आज आदर्शवादी शिक्षा दर्शन के

आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि आज की शिक्षा शिक्षक-प्रधान है।

वस्तुतः परोक्ष, अपरोक्ष रूप से शिक्षक ही वह व्यक्ति है जो पाठ्यक्रमों के निर्माण, शिक्षण व्यवस्था की क्रिया विधि, विद्यार्थियों के सम्यक मूल्यांकन तथा परीक्षण का कार्य करता है। ऐसी स्थिति में शिक्षक की वैचारिक स्वतंत्रता का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। आज जब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर अराजक, स्वेच्छाचारी तथा राष्ट्र-विरोधी

आचार्य चाणक्य के गुरुकुल से लेकर आज के डिजिटल समय तक सदैव शिक्षक ही विचार स्वातंत्र्य के आधार पर विद्यार्थियों का मार्ग प्रशस्त करता आया है। ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षक को सदैव अद्यतन रहने की चुनौती तो सर्वदा आवश्यक है ही, किंतु वह विद्यार्थियों को भी पूर्ण दक्षता-क्षमता तथा परिश्रम के साथ ज्ञान के नए-नए तथ्यों से अवगत करवाता रहे, यह भी आवश्यक है। शिक्षक ही एकमात्र ऐसा सजीव यंत्र है जो भावी पीढ़ी की जाग्रत मशीनें तैयार करता है।

क्रिया-कलापों में कुछ नामचीन शिक्षण संस्थानों में पढ़ने वाले पूर्व और अध्ययनरत विद्यार्थी संलिप्त हो रहे हैं तब विचार की स्वतंत्रता के साथ एक विशिष्ट दायित्व का अनुभव होना भी परमावश्यक है जो युवकों की रचनात्मक वैचारिक स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त कर सके। यदि किसी एक व्यक्ति के विचार-स्वातंत्र्य के कारण दूसरे व्यक्ति के जीवन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तब इसे सार्थक या रचनात्मक विचार स्वातंत्र्य नहीं कहा जा सकता। यह है पश्चिमी जगत की दो प्रमुख विचारधाराओं मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद से अनुस्यूत विचार है जो सामाजिक समरसता तथा राष्ट्रीय एकात्म के लिए नितांत घातक सिद्ध होगा और होता रहा है। व्यक्ति की स्वतंत्रता के रूप में शिक्षक की वैचारिक स्वतंत्रता राष्ट्र के चहुँमुखी विकास के साथ विद्यार्थियों के चहुँमुखी विकास के लिए भी आवश्यक है। इसलिए वैचारिक स्वतंत्रता को नागरिक आचार-संहिता के अनुरूप सम्यक भी होनी चाहिए। यह सच है कि किसी भी देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा साहित्यिक गतिविधियों में स्वतंत्रता का विचार परम आवश्यक है, किंतु जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में परिवर्तन लाने के लिए विद्रोह या क्रांति का विचार अपने संपूर्ण अर्थ में उपयोगी नहीं होकर सापेक्ष अनुकूलता के साथ ही उपयोगी हो सका है। ❑

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था एवं शिक्षक

डॉ. मुस्कान

सहायक प्रोफेसर, विवेकानंद महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

किसी देश के विकास में शिक्षकों का काफी अहम योगदान होता है। शिक्षक विद्यार्थियों के बाल मन में संस्कार संचरित करते हैं। समाज, विज्ञान, भाषा साहित्य, तकनीक-सभी से हमारा परिचय कराने में शिक्षकों की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है।

विश्वगुरु भारत ने समस्त विश्व को आध्यात्म का मार्ग दिखाया। हमारे महर्षियों ने गुरु बनकर आयुर्वेद, योग, विज्ञान आदि के क्षेत्र में विश्व को अपना महान योगदान दिया। ज्ञान के क्षेत्र में भारत की देन अप्रतिम है। हम शून्य के आविष्कारक हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के पालक हैं।

हम उस सभ्यता के वाहक हैं जिसमें गुरु और गोविन्द के बीच भेद नहीं है। गुरु का स्थान सर्वोच्च है। महर्षि संदीपनी, गुरु वशिष्ठ, विश्वामित्र, शौनक, द्रोणाचार्य, शंकराचार्य, चाणक्य, रामकृष्ण परमहंस जैसे अनेक महान गुरुओं ने भारतीय गुरु-शिष्य परम्परा को आलोकित किया है।

भारतीय गुरु-शिष्य परम्परा का एक गौरवशाली इतिहास रहा है। इस सम्पूर्ण परम्परा ने शिक्षक को एक ऐसे आदर्श के रूप में स्थापित किया जो समाज और संस्कृति के पुनरुत्थान एवं राष्ट्रनिर्माण में अपनी सशक्त भूमिका निभा सके। शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में न केवल तार्किकता का विकास करें बल्कि उनमें मूल्यों का भी संचार करें। विद्यार्थियों का मानसिक परिष्करण करें तथा उन्हें संवेदनशील नागरिक बनाएँ।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था तथा शिक्षक की भूमिका को निम्न संदर्भों में समझा जा सकता है -

1. सर्वप्रथम 'मूल्य निरपेक्ष शिक्षा की अपेक्षा मूल्य सापेक्ष शिक्षा पर बल।' भारत में शिक्षा-व्यवस्था का एक गौरवशाली इतिहास रहा है, किन्तु औपनिवेशिक काल से ही हमें भारतीय शिक्षा प्रणाली में एक बड़ा अवसान दिखाई देता है। भारत पर औपनिवेशिक प्रभुत्व तथा विश्व राजनीति में बड़े बदलावों से भारतीय शिक्षा व्यवस्था भी अछूती न रही। आक्रमणकारियों ने सनातन धर्म व भारतीय शिक्षा प्रणाली दोनों को ही गहरा नुकसान पहुँचाया। अंग्रेजी शिक्षा के आगमन ने एक ऐसी शिक्षा पद्धति को जन्म दिया जिसमें मानवीय मूल्यों जैसे - प्रेम, सहनशीलता, करुणा, सद्भाव, मानवधर्म के लिए कोई स्थान ही न था।

पाश्चात्य परिवेश के भौतिकवादी मूल्यों से संचालित अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था ने मानव-मस्तिष्क को एक सजीव मशीन में बदल दिया। इस मशीन में भारतीय संस्कारों के प्रति लगाव न के बराबर था। हमारे आध्यात्मिक ग्रंथों में जिस मूल्यपरक व्यक्तित्व की बात की गई है, उस व्यक्तित्व को ही अंग्रेजी शिक्षा पद्धति ने अपने औपनिवेशिक आग्रहों के कारण पिछड़ेपन का प्रतीक घोषित कर दिया। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति को जबरन भारत पर थोप दिया गया और स्वाधीन भारत में इसी को 'विकास' मान लिया गया। यह एक ऐसी शिक्षा पद्धति थी, जिसमें भारतीय आत्मा अनुपस्थित थी।

वर्तमान में शिक्षा-व्यवस्था, शिक्षाविदों और शिक्षकों सबकी यह जिम्मेदारी है कि वे विद्यार्थियों को पाश्चात्य मूल्यों से संचालित शिक्षा पद्धति के भंवर से बाहर निकालें। विद्यार्थियों से सीधे संबंध रखने वाले शिक्षक वर्तमान शिक्षा प्रणाली को मूल्य निरपेक्ष शिक्षा से मूल्य सापेक्ष शिक्षा की ओर ले जाएँ। विद्यार्थियों में मूल्यों और आध्यात्मिकता और कुल मिलाकर विश्व कल्याण पर आधारित भारतीय संस्कारों का विकास करें। शिक्षा के वास्तविक ध्येय- 'मानवता' से विद्यार्थियों का परिचय कराएं। यह कार्य शिक्षकों से अच्छा और कोई नहीं कर सकता।

2. शिक्षकों की एक अन्य महत्वपूर्ण जिम्मेदारी 'भारतीय संस्कृति और भाषा के अवमूल्यन' को रोकने की भी है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने सम्पूर्ण वसुधा को एक बड़े बाजार में परिवर्तित कर दिया है। वेशभूषा, खानपान, मनोरंजन, रोजगार और सेवाएँ सभी पर पाश्चात्य संस्कृति की गहरी कालिमा फैल गई है। पब कल्चर पल्लवित हुआ है। पश्चिमी उपभोक्तावादी संस्कृति ने हमें अपनी चपेट में ले लिया है। अब हम मनुष्य नहीं 'कन्ज्यूमर' है। यह हमारी नई पहचान है। बहुत से लोग अपनी इस 'कॉस्मोपॉलिटन' पहचान से गदगद् हैं। कर्म को हम 'कर्मा' कहने लगे हैं और योग को 'योगा'। यह भारतीय संस्कृति व ज्ञान का पराभव नहीं तो और क्या है? इससे भी दुखद यह है कि हम इस पराभव को गौरवान्वित कर रहे हैं। भारतीय व्रत और त्योहार बहुराष्ट्रीय फैशन कम्पनियों के लिए 'सेल सीजन', 'डिस्काउंट सीजन' बन गए हैं। क्या यह भारतीय संस्कृति के अवसान की दिशा नहीं है? ऐसा नहीं है कि बाजार संस्कृति की चपेट में आकर हम त्यौहार नहीं मनाते हैं, बस वे हमारे त्यौहार नहीं हैं। 'क्रिसमस', 'हैलोबीन' मनाने का चलन भारतीय हिंदू परिवारों में तेजी से बढ़ रहा है।

इस पृष्ठभूमि में शिक्षकों की भूमिका अत्यन्त निर्णायक हो गई है। शिक्षकों पर यह दायित्त्व आ गया है कि वे बच्चों व युवा पीढ़ी को इस आयातित संस्कृति के पीछे छिपे बाजार-मूल्यों से अवगत कराएँ। भारतीय सांस्कृतिक गौरव से उनको जोड़ें। स्वदेशी संस्कृति व भाषा के प्रति उनकी हीनता ग्रंथि को दूर कर उनमें स्वदेशी के प्रति लगाव व स्वाभिमान विकसित करें।

3. भारतीय ज्ञान परम्परा का अनौपनिवेशीकरण करें। औपनिवेशिक काल के दौरान औपनिवेशिक ताकतों ने भारत पर केवल राजनीतिक प्रभुत्व नहीं जमाया था बल्कि सम्पूर्ण भारतीय परम्परा का भी अवमूल्यन कर दिया था। प्राच्यवादियों ने भारतीय ज्ञान परम्परा, शिक्षा प्रणाली, जीवनशैली, सभी का

माखौल उड़ाया। यह मार इतनी गहरी थी जिसके निशान आज भी दिखाई देते हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में पश्चिमी विचारकों जैसे - प्लेटो, अरस्तू, रूसो, मैकियावली, हॉब्स, मैक्स वैबर आदि को प्रमुखता तथा सम्मान से पढ़ाया जा रहा है। वहीं भारतीय चिंतकों जैसे- कौटिल्य, रामकृष्ण परमहंस, पाणिनी, शंकराचार्य, रवीन्द्रनाथ टैगोर, विवेकानन्द, दीनदयाल उपाध्याय, वीर सावरकर आदि के विचारों को तुलनात्मक रूप से कम महत्त्व दिया गया है। हमारे वेद, उपनिषद आदि ग्रन्थ ज्ञान के भंडार होने के बावजूद उपेक्षित हैं। भारतीय शिक्षा पद्धति में भारतीय चिंतकों और भारतीय चिंतन-परंपरा के प्रति यह रवैया न सिर्फ चिंताजनक है, बल्कि सर्वथा अस्वीकार्य है।

ऐसे में शिक्षकों का दायित्त्व है कि वे इस ज्ञान को विद्यार्थियों से जोड़ने वाली कड़ी बनें। अतीत के गौरव को पुनर्जीवित करें। यह सुखद है कि स्कूल व विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों की पुनरर्चना करने और भारतीय मानस के मस्तिष्क को 'यूरोपकेन्द्रीय ज्ञान पद्धति' के जंजाल से बाहर निकालने की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी है। लॉर्ड मैकाले ने कहा था- 'भारत का सारा ज्ञान एक अलमारी में समा सकता है।' यूरोप के एक बड़े आत्ममुग्ध व आत्मदंभी वर्ग का हमें लेकर यह विचार है। ऐसा कहने समझने से उनका हित सधता है। उनका प्रभुत्व स्थापित होता है। उनका बाजार, उनकी अर्थव्यवस्था मजबूत होती है और भारतीय मानस उनकी सर्वोच्चता के मिथ की ओर आकर्षित होता है। शिक्षक समुदाय का यह कर्तव्य है कि वे इस षड्यंत्र से युवा पीढ़ी को अवगत कराए।

4. रोजगार केन्द्रित शिक्षा से संस्कार केन्द्रित शिक्षा की ओर प्रस्थान - वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का सम्पूर्ण जोर इस बात पर है कि मनुष्य में अर्थव्यवस्था संबंधित कौशल का विकास करें। भाषा, साहित्य व समाजविज्ञान की परिधि को छोड़ दें, तो ज्ञान के अन्य क्षेत्रों का पाठ्यक्रम विद्यार्थियों के रोजगार और उनके आर्थिक विकास से जुड़े विषयों पर ही केन्द्रित दिखाई देता है। भारतीय नैतिकता, राष्ट्रवाद जैसे संस्कार पूरी तरह से उपेक्षित रह जाते हैं। इससे हम एक परमुखापेक्षी मनुष्य का निर्माण कर रहे हैं जिसमें आत्मविश्वास की गहरी कमी है। इसलिए शिक्षक का कार्य है कि वे विद्यार्थियों को प्रेरित करें कि वह भारतीय संस्कारों को अन्त:करण में धारण करें।

5. देशज भाषाओं को महत्त्व - पश्चिमीकरण की आंधी ने भारतीय देशज भाषाओं के महत्त्व को धूमिल कर दिया है। स्वयं राजभाषा और राष्ट्रभाषा हिंदी को भी पर्याप्त महत्त्व नहीं मिल पाया है। परिणामस्वरूप संस्कृत-हिंदी में उपलब्ध ज्ञान का भारतीय भंडार उपेक्षित रह गया। अंग्रेजी को औपनिवेशिक काल के दौरान इरादतन सर्वोच्च स्थान दिया गया। उत्तर औपनिवेशिक काल में भी अंग्रेजी भाषा तथा उसमें उपलब्ध पश्चिमी ज्ञान का परचम लहराता रहा। हिंदी तथा अन्य देशज भाषाओं को लेकर हीन भावना भर दी गई। भारत में अंग्रेजी बोलने व लिखने में कुशलता विद्वान बनने की पूर्वशर्त बन गई। दुर्भाग्यवश यह विषय कभी कोई मुद्दा नहीं बन पाया। विज्ञान, चिकित्सा, अभियांत्रिकी की पढ़ाई का माध्यम केवल अंग्रेजी होने के कारण गरीब परिवारों के बच्चे इनमें कम ही प्रवेश पा सके।

वर्तमान में शिक्षा-व्यवस्था, शिक्षाविदों और शिक्षकों सबकी यह जिम्मेदारी है कि वे विद्यार्थियों को पाश्चात्य मूल्यों से संचालित शिक्षा पद्धति के भंवर से बाहर निकालें। विद्यार्थियों से सीधे संबंध रखने वाले शिक्षक वर्तमान शिक्षा प्रणाली को मूल्य निरपेक्ष शिक्षा से मूल्य सापेक्ष शिक्षा की ओर ले जाएँ। विद्यार्थियों में मूल्यों और आध्यात्मिकता और कुल मिलाकर विश्व कल्याण पर आधारित भारतीय संस्कारों का विकास करें। शिक्षा के वास्तविक ध्येय- 'मानवता' से विद्यार्थियों का परिचय कराएं। यह कार्य शिक्षकों से अच्छा और कोई नहीं कर सकता।

सौभाग्यवश कुछ समय पहले मध्य प्रदेश सरकार ने यह फैसला लिया है कि चिकित्सा विज्ञान एवं इंजीनियरिंग की पढ़ाई विद्यार्थी हिंदी भाषा में भी कर सकेंगे। इन विषयों का हिंदी में पाठ्यक्रम भी तैयार किया गया है। आशा है कि इस सार्थक पहल के सुखद परिणाम देखने को मिलेंगे। निम्न वर्ग तथा मध्यमवर्ग के हिंदी माध्यम में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के विकास की प्रक्रिया में समावेशन की दिशा में यह एक सार्थक पहल है।

नई शिक्षा नीति के पाठ्यक्रम का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि इसमें भारतीय मूल्यों, गौरवशाली पुरातन शिक्षा पद्धति तथा भारत के महान महर्षियों, गुरुओं के विचारों व दर्शन को यथोचित स्थान दिया गया है। एक नैतिक व दूरदर्शितापूर्ण सरकार के नेतृत्व में शिक्षा के क्षेत्र में भारत देश नित नए कीर्तिमान रच रहा है। शिक्षक और विद्यार्थी दोनों ही के समुचित विकास को केंद्र सरकार वरीयता दे रही है। आज का शिक्षक इतना सक्षम बन रहा है कि वह राष्ट्रनिर्माण और सामाजिक परिवर्तन में अपनी सकारात्मक भूमिका निभा सके। उपरोक्त बिन्दुओं के कार्यान्वयन के माध्यम से हम अपने अतीत के गौरव को पुन: प्राप्त कर पाएंगे। यह पूर्णत: संभव है। ❑

वैश्वीकरण के दौर में हिंदी की वैश्विक स्थिति

डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि'
एसोसिएट प्रोफेसर
बीएड विभाग
श्री जय नारायण मिश्र
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
लखनऊ (उ.प्र.)

वैश्वीकरण का सीधा अभिप्राय विश्व को एकीकृत करना है। लेकिन यह वैश्वीकरण विदेशी कम्पनियों द्वारा बाजारवाद फैलाने की कोशिश से शुरू हुआ है जिसका अँगरेज़ी शब्द 'ग्लोबलाइजेशन' अधिक प्रचलित है। यह ग्लोबलाइजेशन, ग्लोब और ग्लोबल से बना है जिसका हिंदी शब्द विश्व और वैश्विक है। यह ग्लोबलाइजेशन अब केवल व्यापार एवं बाजार तक सीमित न होकर मूलतः अपनी वास्तविकता से दूर कई क्षेत्रों को प्रभावित करने लगा है। ग्लोब अर्थात् विश्व अथवा भूमण्डल को समेटकर एक कर दिया है। आजकल ग्लोबल-मार्केटिंग, ग्लोबल-वार्मिंग, ग्लोबल-कल्चर, ग्लोबल-लिट्रेचर, ग्लोबल-मीडिया, ग्लोबल-टेक्नॉलोजी जैसे अनेक आयाम जुड़ते जा रहे हैं जबकि इस वैश्वीकरण के द्वारा समाज को विकसित एवं अग्रणी बनाने की कोशिश करना चाहिए, परन्तु वैश्वीकरण के दौर में समाज को समस्याओं एवं बुराइयों से अधिक जूझना पड़ रहा है तो जाहिर है कि सामाजिक समस्याओं से साहित्य भी प्रभावित होगा।

भारतीय संस्कृति में ऋषियों ने भी वैश्विक समाज की संकल्पना की थी और उसे मूर्त रूप दिया था। भारत का वैदिक ऋषि यह उद्घोष करता है- 'कृण्वन्तोविश्वमार्यम्' (ऋग्वेद-9/63/5) अर्थात् सम्पूर्ण विश्व को श्रेष्ठ बनाएंगे। ऋषियों ने भारतीय संस्कृति को सम्पूर्ण विश्व में फैलाते हुए यह भी कहा था -

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

आज के वैश्वीकरण से पृथक् हमारे ऋषियों ने सम्पूर्ण विश्व को नई-चेतना एवं जीवन-मूल्य देने हेतु सारी पृथ्वी को अपना परिवार घोषित किया था, जबकि आज की आर्थिक-शक्तियाँ दूसरे देश की धरती को अपना वाणिज्य व्यापार समझती हैं न कि परिवार। भारतीय ऋषियों ने सम्पूर्ण विश्व की धरती को अपना परिवार मानकर ही कहा था कि सारी धरती हमारा परिवार है अर्थात् 'वसुधैव कुटुम्बकम्'।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' की संकल्पना की इकाई से संस्कारित परिवार बनता है और इस संस्कारित परिवार से सुसंस्कृत समाज का निर्माण होता है तो निश्चित है कि सुसंस्कृत समाज से आदर्श राष्ट्र अवश्य बनेगा। ऐसे आदर्श राष्ट्र से वैश्विक संस्कृति का उत्थान अवश्यंभावी होगा, किन्तु वैश्वीकरण की वर्तमान स्थिति अत्यन्त भयावह दिखाई देती है।

इस वैश्वीकरण से न केवल हमारा खानपान, रहन-सहन, बोली-भाषा, समाज-संस्कृति प्रभावित हो रहा है, अपितु हमारा साहित्य प्रदूषित होता जा रहा है। वैदिक ऋषियों ने भारतीय संस्कृति को विश्व की आदि-संस्कृति घोषित करते हुए यह भी कहा था -

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववाराः।।

(यजुर्वेद-7/14)

'वैश्वीकरण' शब्द का सम्मोहन आज अधिक दिखाई देता है क्योंकि भूमण्डलीकरण से समाज मानो ऐसा दिख रहा है कि हम सब एक हैं और इस पृथ्वी पर फैलकर भी समान रूप में एकत्रित हैं, जबकि वैश्वीकरण का यह संदेश नहीं है। यह मात्र शक्तिशाली राष्ट्रों एवं विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों का आर्थिक दोहन एवं अधिकारों के हनन का षड्यंत्र है। यही कारण है कि आज के युग में भौतिक संसाधनों के दुरुपयोग, सामाजिक पतन, अनेक देशों में संघर्ष, गृहयुद्ध, शक्तिपरीक्षण, भ्रष्टाचार, आतंकवाद व अराजकता का विस्तार होता जा रहा है और जीवन-मूल्य, सांस्कृतिक-बोध और मानवीय संवेदनाओं का ह्रास हो रहा है। परन्तु अथर्ववेद का मंत्र-द्रष्टा ऋषि अपनी ऋचा के माध्यम से विराट विचार-दर्शन को प्रस्तुत करते हुए कहता है-

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।।

(अथर्ववेद-12/1/12)

जिस संस्कृति ने सम्पूर्ण पृथ्वी को माता के रूप में गौरवपूर्ण स्थान दिया, प्रकृति को पिता के रूप में पूजता रहा तथा सम्पूर्ण जगत की सभी प्राणियों में परमात्मा का स्थान मानकर दया, करुणा, ममता का भाव रखा है उसकी देन उसके गौरवशाली साहित्य एवं दर्शन ही हैं। वैश्वीकरण के जाल में आज हमारा भारत भी फँसता नजर आ रहा है क्योंकि सत्ता-लोलुप राजनेता हमारे देश की धरोहर को विभिन्न कंपनियों को देने में संकोच नहीं कर रहे हैं। हमारी शिक्षा का भी वैश्वीकरण किया जा रहा है। इसीलिए वे विदेशी शिक्षा, विदेशी विश्वविद्यालयों तथा विदेशी नीतियों को भारत के ऊपर थोपना चाहते हैं जिससे इस देश की प्रतिभाएँ विदेशी ताकतों की गुलाम बन जायें और अपनी भारतीय परम्परा, भारतीय ज्ञान-विज्ञान की धरोहर, भारतीय शिक्षा-पद्धति, भारतीय संस्कृति-संस्कार को भूल जायें। ऐसा कुचक्र न गुलामी के काल में मुगलों ने किया, न ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने; लेकिन तथाकथित शैक्षिक-स्वतंत्रता के नाम पर भारतीय शिक्षा का भी वैश्वीकरण किया जा रहा है। वैश्वीकरण की नीति से हमारी अर्थव्यवस्था को झटका लगा है साथ ही भारत की संस्कृति, शिक्षा एवं धर्म-साधना को भी धूलिसात कर दिया जा रहा है। इस वैश्वीकरण से भारतीय भाषा के साहित्य पर अत्याधिक प्रभाव पड़ा है किन्तु लाभ कम, हानि अधिक हुए हैं। नब्बे के दशक में भारत पर इण्टरनेट, वेब-दुनिया और कम्प्यूटर के द्वारा वैश्वीकरण ने भारतीय साहित्य पर भी धावा बोल दिया।

आज के वैश्वीकरण से पृथक् हमारे ऋषियों ने सम्पूर्ण विश्व को नई-चेतना एवं जीवन-मूल्य देने हेतु सारी पृथ्वी को अपना परिवार घोषित किया था, जबकि आज की आर्थिक-शक्तियाँ दूसरे देश की धरती को अपना वाणिज्य व्यापार समझती हैं न कि परिवार। भारतीय ऋषियों ने सम्पूर्ण विश्व की धरती को अपना परिवार मानकर ही कहा था कि सारी धरती हमारा परिवार है अर्थात् 'वसुधैव कुटुम्बकम्'।

हम जहाँ मातृभाषाओं का संवर्धन करना चाहते हैं और भारतीय भाषाओं के विकास के साथ विदेशी-अंग्रेजी को हटाना चाहते हैं, वहीं छतीसगढ़ और राजस्थान की सरकार के द्वारा अंग्रेजी माध्यमों के स्कूलों और महाविद्यालयों का निर्माण कर भारतीय भाषाओं और और हिंदी को कमजोर करने का प्रयास किया जा है। इसका हमारी भारतीय शिक्षा-संस्कृति पर गहरा दूरगामी प्रभाव पड़ने वाला है, जिसको हम नजरंदाज नहीं कर सकते। इसके पीछे भी भूमंडलीकरण का प्रभाव माना जा सकता है कि भारत की स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव के 75वें वर्ष के अवसर पर देश की भाषा संस्कृति को जहाँ बढ़ावा दिया जाना चाहिए, वहाँ देश की गुलामी की अंग्रेजी भाषा को पुष्पित होने के लिए कालेज खोले जा रहे हैं। ऐसे गाँधी के देश में अंग्रेजी माध्यम के अनेक स्कूल और कालेज खोले जा रहे हैं, जिनका विरोध न करके वैश्वीकरण की इस अंधी दौड़ में इसका स्वागत-अभिनंदन किया जा रहा है।

यद्यपि हमारे यहाँ भारतीय मनीषा ने 'साहित्य' शब्द को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है। इसीलिए साहित्य के विषय में कहा गया है कि- 'सहितस्यभावः साहित्यम्' अर्थात् सामाजिक कल्याण की भावना जिसमें सन्निहित हो, वह साहित्य है। अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक-आचार्य ने काव्य (साहित्य) की परिभाषा में इसी

भाव की ओर संकेत करते हुए लिखा है – जिस शब्द और अर्थ में हित व कल्याण का भाव समाहित हो, वही काव्य की संज्ञा हो सकती है। जनसामान्य में प्रचलित साहित्य का यह स्पष्ट भाव दिखाई देता है – सत्यं शिवं सुन्दरम्। श्रीरामचरितमानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है– 'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।'

लेकिन आज के वैश्वीकरण के युग में न साहित्य में लोक कल्याण का भाव रह गया है, न ही मानवीय मूल्य के साहित्य का सृजन हो रहा है। वैश्वीकरण का इतना प्रभाव हिंदी के संबंध में अवश्य दिखाई देता है कि वेब दुनिया से हमारे हिंदी साहित्य का सरोकार सतही; किन्तु व्यापक रूप में वैश्विक स्तर पर निरन्तर प्रचार–प्रसार हो रहा है लेकिन अपने मूल रूप में नहीं। इसीलिए 'हिंदी' के बजाय यह 'हिंग्लिश' बनती जा रही है। इतने के बावजूद भी आज वैश्वीकरण और पत्रकारिता के कारण मीडिया में हिंदी को सर्वाधिक स्थान मिलने लगा है और हिंदी भारत से निकलकर अमेरिका, अफ्रीका, यूरोप और एशिया के विभिन्न देशों में अपना पाँव पसारने लगी है। अब इन महाद्वीपों में अनेक हिंदी पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ–साथ हिंदी में विभिन्न गोष्ठियों और पुरस्कार–सम्मान भी शुरू हो गये हैं। हिंदी अपनी लोकप्रियता को इतना विस्तारित कर ली है कि हिंदी का लोकप्रिय साहित्य अब शतानेक विदेशी भाषाओं में बहुतायत रूप में अनूदित होने लगा है। यही कारण है कि आज प्रतिभाशाली लेखकों को अब प्रकाशकों की गणेश–परिक्रमा नहीं करनी पड़ती है, बल्कि देशी–विदेशी प्रकाशक अब स्वयं लेखकों से उनकी उत्तम रचनाओं को प्रकाशित करने के लिए विपुल मात्रा में अग्रिम धनराशि देते हैं। इन्हीं लोकप्रियता के कारण हिंदी माध्यम की अनेक संस्थाएँ खुल रही हैं और विद्यार्थी रुचि के साथ अध्ययन भी करते हैं। आज देश–विदेश में हिंदी–विद्यार्थी अनुवादक व केन्द्र–स्वागतकर्ताओं (काल–सेंटर) के रूप में सेवा के अनंत अवसर पा रहे हैं और ये अधिकाधिक संख्या में हिंदी–शिक्षक के रूप में अनेक पदों एवं स्थानों को ग्रहण कर रहे हैं।

वैश्वीकरण और इण्टरनेट की दुनिया हिंदी को अंदर से खोखला करती जा रही है किन्तु आज सर्च–इंजन पर हिंदी से संबंधित जानकारियाँ, विविध विषयों पर आधारित आलेख सर्व–सुलभ हैं। अणु–डाक (ई–मेल) सेवा को रोमनलिपि से हिंदी में रूपांतरित करके समाचार अथवा किसी प्रकार की लिखित विवरण–सामग्री तत्काल प्रेषित करने में अत्यंत सहायक सिद्ध है। आज वेब दुनिया 'हिंदी–नेक्स्ट' तथा 'हिंदी साईट्स' पर सम्पूर्ण विश्व को हिंदी साहित्य उपलब्ध कराने में समर्थ एवं सहायक भी है। आज इण्टरनेट की 'ककहरा' में दक्ष कोई भी साहित्यकार अपने घर, गाड़ी, दुकान, यात्रा आदि किसी भी स्थिति–परिस्थिति में अपने कृतित्व एवं व्यक्तित्व को ब्लॉग, ट्यूटर, फेसबुक, वाट्सएप, एस्ट्राग्राम आदि के द्वारा संचार–सुविधा से युक्त व्यक्तियों में कम समय में प्रसिद्धि प्राप्त कर ले रहा है। वेब– दुनिया के द्वारा आज हम प्रसिद्ध अथवा अप्रसिद्ध व्यक्ति की रचनाओं एवं विचारों से अधिकाधिक लाभान्वित हो रहे हैं। इसी प्रकार आज कवि–लेखक यू–ट्यूब, मोबाइल–नेट के माध्यम से जन–जन तक अपनी पहुँच बनाने में समर्थ होता दिख रहा है।

विदेशी कम्पनी, पूंजी, टेक्नॉलोजी से उत्पन्न ग्लोबलाइजेशन और लिब्रलाइजेशन ने आर्थिक, व्यावसायिक तथा व्यापारिक बढ़ावा दिया है जबकि बाजारवाद की नींव पर उपभोक्तावादी–संस्कृति, साम्राज्यवादी–संस्कृति, उपनिवेशवादी–संस्कृति से ही वैश्वीकरण, उदारीकरण, ध्रुवीकरण, बाजारीकरण, भूमण्डलीकरण जैसे शब्दों का सृजन हुआ, किन्तु धीरे-धीरे पूंजीवाद, संचार माध्यम, वैश्वीकरण की बाजार–संस्कृति और विज्ञापनों ने भारतीय धर्म, साहित्य, संस्कृति, संवेदना की भावना, अस्तित्व एवं विचारों को समाप्त कर दिया है जिस भारतीय संस्कृति में नारी के लिए कहा गया था– 'यत्र

नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।' आज उसी नारी को 'भोग्य और वस्तु का विषय' बनाकर विज्ञापन की कठपुतली में समेट दिया है। परिणामत: धन एवं भौतिकता के मद में स्त्रियाँ खुलेआम देह-प्रदर्शन कर रही हैं।

आजादी के अमृत महोत्सव के इस कालखंड में आज हमें हिंदी-प्रेमियों एवं भारतीय भाषा-प्रेमियों को इस बात की चिन्ता एवं प्रयत्न करने की जरूरत है कि वैश्वीकरण के दौर में साहित्य की दयनीय दशा को सुधारते हुए भाषा और साहित्य के लिए नई दिशाएँ निश्चित करनी चाहिए और महत्त्वपूर्ण अग्रलिखित बिन्दुओं की दिशा में जागरूक होकर प्रयास करना चाहिए । आजादी के समय देश में हिंदी प्रचारक अपने हाथ में लालटेन (दीपक) लिए गाँव-गाँव में हिंदी का प्रचार किया करते थे जिनकी संख्या केवल दक्षिण भारत में ही तीन हजार से अधिक थी। अत: आज भी सारे संसाधनों का उपयोग करते हुए हिंदीतर क्षेत्रों सहित हिंदी-पट्टी में भी हिंदी प्रचारकों, संगठनों एवं प्रतिष्ठानों को संचालित करना चाहिए। हिंदी आज संख्याबल में अंग्रेजी और चीनी भाषा मंदारिन से आगे बढ़ गई है। ऐसे शिखर पर जाने वाली बहुसंख्यक हिंदी की रचनाधर्मिता को कालजयी एवं गुणवत्ताशील बनाने की जरूरत है। हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो रही है और राजभाषा के रूप में भारत सरकार के गृहमंत्रालय के राजभाषा अनुभाग के हिंदी अधिकारियों, निदेशकों, प्रबंधकों के साथ राजभाषा आयोग, संसदीय राजभाषा समिति, विभिन्न मंत्रालयों की हिंदी सलाहकार समितियाँ, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, हिंदी विश्वविद्यालय (वर्धा, भोपाल, कोलकाता), वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली आयोग, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों की उपलब्धियाँ हिंदी को निरन्तर प्रगति प्रदान कर रही हैं, इन्हें थोड़ा और जागरूक होने की भी आवश्यकता है।

वर्तमान समय में इलेक्ट्रानिक मीडिया एवं प्रिंट मीडिया ने समाज में अपनी मजबूत पकड़ स्थापित कर ली है। आज जनसंचार भाषा के रूप में हिंदी प्रगति कर रही है। इसलिए इसमें प्रसार संख्या और गुणवत्ता अभी बढ़ाने की जरूरत है जिससे संचार भाषा के रूप में हिंदी का अधिकाधिक सम्पोषण हो सके। वैश्वीकरण के युग में सूचना-संचार की दृष्टि से हमें हिंदी तकनीशियन और कम्प्यूटर की भाषा में दक्ष भाषायन्त्रियों को सशक्त तथा समृद्धशाली बनाने की जरूरत है। हिंदी के विभिन्न विषयों की समस्याओं पर विचार करते हुए शिशु के प्रारंम्भिक ज्ञान से लेकर उच्च शिक्षा एवं शोध-समीक्षा के पठन-पाठन में ज्ञान-विज्ञान हेतु हिंदी माध्यम का शिक्षक तैयार करने की दृढ़ इच्छाशक्ति होनी चाहिए। आज हमें हिंदी को विज्ञान-तकनीकी, बाजार-विपणन, वैचारिक-लेखन रचनात्मक-लेखन, संचार-माध्यम और राजकीय-कामकाज के साथ-साथ अपने दैनिक व्यावहारिक जीवन में अपनाने और उतारने की जरूरत है। वर्तमान समय में विज्ञान एवं तकनीकी की दौड़ में हिंदी को अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए हमें ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में आदान-प्रदान का माध्यम अनुवाद को बनाने के लिए अनुवाद-प्रशिक्षण, कार्यशाला, संगोष्ठी के साथ 'राष्ट्रीय व राजकीय अनुवाद प्राधिकरण' भी बनाने की आवश्यकता है।

भूमण्डलीकरण के युग में भारत सांस्कृतिक राष्ट्र के साथ विश्व का एक बहुत बड़ा बाजार भी बन गया है। अत: विदेशी कम्पनियों के आवागमन तथा व्यापार को देखते हुए हिंदी में द्विभाषिये की अधिक माँग है जिसे हमें पूरा करने की आवश्यकता है। आज देश एवं विदेश में मीडिया चौथे स्तम्भ के रूप में शक्तिशाली बन गई है। अत: जनसंचार प्रौद्योगिकी के युग में सूचना, मनोरंजन, ज्ञानार्जन एवं प्रबोधन की माध्यम इलेक्ट्रानिक एवं प्रिंट मीडिया, आकाशवाणी, दूरदर्शन, फिल्म, वीडियो, इंटरनेट जैसे संसाधनों के लिए हिंदी माध्यम के मीडिया-लेखक तैयार करने एवं प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है। उच्च शिक्षण संस्थानों की संख्यात्मक दृष्टि से गुणवत्ता-युक्त शिक्षा प्रदान करने एवं शोध की दिशा में स्तरीय-कार्य करने वाला संस्थान तैयार करना बहुत आवश्यक है। पत्रकारिता के युग में आज हमें साहित्य एवं समाज को मजबूत बनाने के लिए पीत-पत्रकारिता से बचकर राष्ट्रोपयोगी-ज्ञानोपयोगी पत्र-पत्रिकाओं का स्तरीय प्रकाशन-संपादन करने की भी आवश्यकता है।

देश की आजादी में राष्ट्रभाषा के आन्दोलन को प्रखर रूप प्रदान करने वाली अनेक संस्थाएँ थीं जिनमें उन संस्थाओं का पुनरुद्धार करने की आवश्यकता है तथा हमें हिंदी-सेवियों की स्मृति को प्रकाशमान बनाना चाहिए। हिंदी भाषा के मानकीकरण की समस्या प्रारंम्भिक आंदोलन से ही विद्यमान है। इसलिए हमें अब एक सर्वमान्य हिंदी की मानक शब्दावली बना लेनी चाहिए और हिंदी की देवनागरी लिपि का मानकीकरण कर लेना चाहिए। वैश्वीकरण के युग में अंग्रेजी भाषा के प्रभाव में भारतीय भाषाओं सहित हिंदी भी अधिक प्रभावित है। हिंदी की लगभग 200 बोलियाँ एवं उपबोलियाँ हैं जिनका भौगोलिक सर्वेक्षण करके इनका विकास तथा इनकी वाचिक परम्परा के साथ इनके साहित्य के संरक्षण एवं संवर्द्धन की दिशा में सोचना चाहिए। हिंदी ने अपने डेढ़ हजार वर्षों के कालखण्ड में विकसित होकर लाखों हिंदी साहित्य की पुस्तकें सृजित की हैं ऐसे प्रकाशित साहित्य के पुनर्संपादन-प्रकाशन के साथ अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित करना चाहिए तथा सर्वसुलभ एवं संरक्षित करना चाहिए। हिंदी भाषा एवं साहित्य के संवर्द्धन-संरक्षण के लिए आज हमें प्रचार-प्रसार, कानूनी-संघर्ष, प्रोत्साहन, सौहार्द बनाने की आवश्यकता है। ❑

राष्ट्र भाषा, राष्ट्र लिपि और राष्ट्रीय एकीकरण!

प्रो. रसाल सिंह

अधिष्ठाता,
जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय

देशभर में राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 को लागू करने के लिए जोर-शोर से काम हो रहा है। इस नीति में शिक्षा का माध्यम मातृभाषाओं या भारतीय भाषाओं को बनाने पर विशेष बल है। किंतु वर्तमान शैक्षिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में यह कार्य अत्यंत चुनौतिपूर्ण है क्योंकि भारतीय भाषाएँ औपनिवेशिक भाषा अंग्रेजी से आशंकित, आक्रांत और असुरक्षित हैं। वह धीरे-धीरे भारतीय भाषाओं को लीलती जा रही है। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल हिंदीतर 21 भारतीय भाषाओं की जगह बौद्धिक जगत में क्रमशः सिकुड़ती जा रही है। अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व में क्रमशः बढ़ोतरी हो रही है। सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन, शासन-प्रशासन, बाजार-व्यापार के अलावा शिक्षा के माध्यम के रूप में भी अंग्रेजी ने अभूतपूर्व बढ़त बनायी है।

अंग्रेजी का वर्चस्व और अंग्रेजी माध्यम की अनिवार्यता आज की बड़ी चुनौती है। भारत में तुतलाते हुए मासूम बच्चों को ठोक-पीटकर अंग्रेजी सिखाने का कारोबार खूब फल-फूल रहा है। इस धंधे ने उनकी सीखने और सोचने-समझने की क्षमता को कुंद कर दिया। दलितों-पिछड़ों, गाँवों-गरीबों और किसानों के करोड़ों बच्चे देश के विकास में पूर्ण योगदान इसलिए नहीं दे पा रहे हैं क्योंकि अंग्रेजी माध्यम की क्रमशः बढ़ती अनिवार्यता ने उनकी संभावनाओं को सीमित कर दिया है। इसलिए अंग्रेजी के वर्चस्व और अंग्रेजी मानसिकता का प्रतिरोध जरूरी है। अंग्रेजी एक भाषा या विषय मात्र नहीं, बल्कि औपनिवेशिक और तथाकथित श्रेष्ठता-बोध और सांस्कृतिक वर्चस्ववाद का प्रतीक है। अंग्रेजी को अंतरराष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में तो अपनाया जा सकता है, लेकिन शिक्षा के माध्यम या भारत की संपर्क भाषा के रूप में उसे नहीं थोपा जाना चाहिए। भारत की वाणी भारतीय भाषाएँ ही हो सकती हैं।

वर्तमान केंद्र सरकार के प्रयत्नों से हिंदी, मराठी, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, असमिया, डोगरी, कश्मीरी और पंजाबी आदि अन्य भारतीय भाषाओं को समर्थन, सम्मान और स्वीकृति प्रदान करने से स्थिति कुछ संतुलित तो हुई है; किंतु अभी बहुत काम करने की आवश्यकता है। मातृभाषा में शिक्षण शिक्षार्थी की बौद्धिक क्षमताओं के अधिकतम विकास और भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से अत्यंत

वर्तमान केंद्र सरकार के प्रयत्नों से हिंदी, मराठी, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, असमिया, डोगरी, कश्मीरी और पंजाबी आदि अन्य भारतीय भाषाओं को समर्थन, सम्मान और स्वीकृति प्रदान करने से स्थिति कुछ संतुलित तो हुई है; किंतु अभी बहुत काम करने की आवश्यकता है। मातृभाषा में शिक्षण शिक्षार्थी की बौद्धिक क्षमताओं के अधिकतम विकास और भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण भी है। यह भारत को वैश्विक ज्ञान शक्ति अर्थात विश्वगुरु बनाने की महत्त्वाकांक्षी परियोजना की आधारशिला है। भारत के सांस्कृतिक गौरव की प्रतिष्ठा का प्रस्थान-बिंदु भारतीय भाषाओं का पारस्परिक संपर्क, संवाद और संगठन है।

महत्त्वपूर्ण भी है। यह भारत को वैश्विक ज्ञान शक्ति अर्थात विश्वगुरु बनाने की महत्त्वाकांक्षी परियोजना की आधारशिला है। भारत के सांस्कृतिक गौरव की प्रतिष्ठा का प्रस्थान-बिंदु भारतीय भाषाओं का पारस्परिक संपर्क, संवाद और संगठन है।

अंग्रेजी वर्चस्ववाद से निपटने के लिए भारतीय भाषाओं को एक-दूसरे के निकट आने की आवश्यकता है। उनके आपसी अपरिचय और अलगाव को मिटाने की दिशा में प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है। भारतीय भाषाओं के विकास, प्रचार-प्रसार और आपसी संपर्क-संवाद में देवनागरी लिपि की निर्णायक भूमिका हो सकती है। तमाम भारतीय भाषाओं के श्रेष्ठतम साहित्य को देवनागरी लिपि में लिप्यन्तरित करके बहुसंख्यक और व्यापक हिंदी समाज तक लाने की जरूरत है।

सभी भारतीय भाषाओं द्वारा राष्ट्रलिपि या संपर्क लिपि के रूप में देवनागरी लिपि को अपनाने की बात राजा राममोहन राय, लोकमान्य तिलक, महर्षि दयानंद सरस्वती, महात्मा गाँधी, आचार्य विनोबा भावे, कृष्णस्वामी आयंगर, मुहम्मद करीम छागला और बिनेश्वर ब्रह्म जैसे अनेक महापुरुषों ने समय-समय पर की है। आज संकीर्ण राजनीति और क्षेत्रवादी अस्मिताओं से ऊपर उठकर उनके उस स्वप्न को साकार करने की दिशा में आगे बढ़ने का समय है। 'देवनागरी के नवदेवता' बिनेश्वर ब्रह्म ने तो इस स्वप्न के लिए ही अपना प्राणोत्सर्ग भी किया था।

भारतीय भाषाओं की एक लिपि होने से उनके बीच का अपरिचय, अविश्वास और दूरी मिटेगी। वे एक-दूसरे के अधिक निकट आ सकेंगी। उनके बीच अधिक आत्मीयता पैदा होगी और उनमें बहनापा बढ़ेगा। यह एक दूरगामी महत्त्व की परियोजना है। संस्कृत से उद्भूत भारतीय भाषाओं और लिपि-हीन भाषाओं एवं बोलियों की लिपि के रूप में देवनागरी लिपि को अपनाकर यह शुरुआत की जा सकती है। आज जम्मू-कश्मीर, उत्तर-पूर्व, अंडमान-निकोबार और गोवा आदि की अनेक ऐसी भाषाएँ एवं बोलियाँ हैं जो लिपि न होने के अभाव में अस्तित्व संकट से जूझ रही हैं। इन क्रमशः विलुप्त हो रही भाषाओं में श्रुत/मौखिक साहित्य की अत्यंत समृद्ध परम्परा रही है। उस दुर्लभ साहित्य को न सिर्फ संरक्षित करने की आवश्यकता है; बल्कि उसे अब तक अपरिचित रहे व्यापक समाज के बीच ले जाने की भी आवश्यकता है। नयनार-आलवार संतों के साहित्य, जयदेव के गीतगोविन्दं, नानकदेव की गुरुवाणी, शंकरदेव के पदों, लल्लेश्वरी के वाख़, तुलसीदास की रामचरितमानस और गुरुदेव की गीतांजलि को हर साक्षर भारतीय को पढ़ना चाहिए। इससे सामाजिक निकटता और सांस्कृतिक प्रगाढ़ता बढ़ेगी।

तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम आदि जिन भारतीय भाषाओं की अपनी पृथक लिपि है; उनकी सह-लिपि के रूप में देवनागरी लिपि को अपनाने से अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक संकीर्णताओं का निदान हो सकता है। भारत की भाषानीति लम्बे समय से चर्चा और चिन्तन का केंद्र रही है। भारत बहुभाषिक, बहुलिपिक देश है। लेकिन इस बहुलता के बावजूद भारतीयता की अंतर्धारा उसे उसकी सबसे बड़ी विशिष्टता है। भारतीयता की इस अंतर्धारा को और अधिक पुष्ट करने में राष्ट्रभाषा हिंदी की तरह ही राष्ट्रलिपि देवनागरी लिपि की बड़ी भूमिका हो सकती है। तमाम विरोध और संकीर्ण राजनीति को पीछे छोड़ते हुए आज हिंदी देश की स्वाभाविक संपर्क भाषा बन गयी है। वह राष्ट्रीय एकीकरण की भी संवाहिका है। इसी प्रकार देवनागरी लिपि को समस्त भारत की संपर्क लिपि बनाने हेतु देशवासियों को संगठित और सक्रिय होना चाहिए। भाषा विशेष की विशिष्ट ध्वनियों को समायोजित करने के लिए देवनागरी लिपि में आंशिक संशोधन/परिवर्द्धन भी किया जा सकता है। देवनागरी लिपि को लचीलापन और उदारता दिखानी चाहिए ताकि अधिकाधिक भारतीय भाषाओं के साथ उसकी सहज निकटता और आत्मीयता स्थापित हो सके।

तमाम भाषाशास्त्री भाषा-शिक्षण के अंतर्गत चार भाषिक कौशलों का उल्लेख करते हैं - सुनना, बोलना, लिखना और पढ़ना। सुनना और बोलना नामक दो भाषिक कौशल भाषा-अधिगम का प्रथम चरण हैं; जबकि लिखना और पढ़ना द्वितीय चरण माने जाते हैं। भाषा-अधिगम

के द्वितीय चरण का सम्बन्ध लिपि से है। भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि को अपनाकर भाषा अधिगम की जटिल प्रक्रिया को बहुत सरल और सर्वसाध्य बनाया जा सकता है। ऐसा करके सिर्फ प्रथम चरण के साथ ही नई-नई भाषाओं को सीखा जा सकेगा। द्वितीय चरण के मुश्किल होने के कारण ही किसी भी भाषिक समुदाय में प्रथम चरण में दक्ष अर्थात् सुनने-बोलने वाले लोग द्वितीय चरण में दक्ष अर्थात् लिखने-पढ़ने वालों की तुलना में बहुत अधिक होते हैं। प्रथम चरण भी काफी आसान हो जायेगा क्योंकि कश्मीर से कन्याकुमारी तक और कच्छ से कामरूप तक भारतीय भाषाओं के सांस्कृतिक सन्दर्भ और शब्दावली काफी मिलती-जुलती है। इसका मूल कारण यह है कि अनेक भारतीय भाषाओं की व्युत्पत्ति वेदभाषा संस्कृत से हुई है। यह भारतीयों को बहुभाषिक बनाने की भी कुंजी है। शिक्षित भारतीय अनेक भाषाओं को आसानी से पढ़-लिख सकेगा और उनके समृद्ध साहित्य, अन्तर्निहित सांस्कृतिक परम्पराओं से परिचित हो सकेगा। उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि भारतीय भाषाएँ परस्पर प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि संपूरक हैं। देवनागरी लिपि को अपनाने से यह पस्परता और संपूरकता क्रमशः बढ़ेगी। भारतीय भाषाओं में शत्रुता नहीं, मैत्री और लेन-देन जरूरी है।

अरब जगत की अधिकांश भाषाओं की लिपि अरबी और यूरोप-अमेरिका की अनेक भाषाओं की लिपि रोमन है। इसलिए उनमें न सिर्फ बेहतर सामाजिक-सांस्कृतिक संवाद है, बल्कि व्यापार और पर्यटन भी खूब फल-फूल रहा है। आज बाज़ार और भाषा का अन्यान्योश्रित सम्बन्ध है। भाषा के माध्यम से बाजार का विस्तार होता है और बाजार के द्वारा भाषा का प्रचार-प्रसार होता है। इसीलिए हिंदी का इतना विकास और विस्तार हो रहा है। अन्य भारतीय भाषाएँ देवनागरी लिपि के माध्यम से अपनी बड़ी बहन हिंदी के साथ

जुड़कर न सिर्फ सांस्कृतिक रूप से समृद्ध होंगी; बल्कि रोजगार, व्यापार और पर्यटन क्षेत्र में भी अपनी जगह बना सकेंगी। बड़े बाजार की भाषा होने से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भाषा की पहचान और पूछ बढ़ती है। वह अंतरराष्ट्रीय कूटनीति को प्रभावित करते हुए विदेश-नीति निर्धारण में निर्णायक हस्तक्षेप कर सकती है। अंग्रेजी के भाषिक आतंकवाद से निपटने के लिए भारतीय भाषाएँ साझा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, समान शब्दभंडार और देवनागरी लिपि के आधार पर एक संयुक्त मोर्चे का निर्माण कर सकती हैं। डोगरी भाषा की मूल लिपि टाकरी और कश्मीरी भाषा की शारदा थी। लेकिन समयांतराल में डोगरी ने देवनागरी और कश्मीरी ने नस्तालिक को अपना लिया। आज डोगरी हिंदी समाज द्वारा भी पढ़ी-समझी जाती है। लेकिन कश्मीरी भाषा क्रमशः सिमट-सिकुड़ रही है। वह भी देवनागरी को अपनाकर अपना हिंदी और भारतीय भाषाओं से जुड़ सकती है। अपना विकास और विस्तार कर सकती है। यूँ भी देवनागरी लिपि उसकी मूललिपि शारदा से ही विकसित हुई है। अतः स्वाभाविक रूप से उसकी लिपि देवनागरी लिपि ही होनी चाहिए।

यह किसी भी भारतीय भाषा या उसकी लिपि को खत्म करने या उसकी जगह को हड़पने की योजना नहीं; बल्कि भारतीय भाषाओं की आपसी समझदारी, साझेदारी और बहनापे को बढ़ाने की परियोजना है। इस परियोजना से किसी भी भारतीय भाषा को कोई खतरा नहीं होगा। अगर किसी को खतरा होगा तो औपनिवेशिक वर्चस्ववाद को ही होगा। रोमन लिपि के भारतीय भाषाओं की लिपि बन बैठने से पहले ही हमें इस खतरे से निपटने की दिशा में सक्रिय पहल करनी चाहिए।

राजनीति जोड़-तोड़ का काम है। इसलिए वह जोड़ती भी है और तोड़ती भी है। लेकिन संस्कृति अगर वह वास्तव में संस्कृति है तो जोड़ती ही जोड़ती है। इसलिए इस परियोजना को फलीभूत करने का उत्तरदायित्व राजनेताओं से ज्यादा संस्कृतिकर्मियों का है। उन्हें आगे आकर और एकमत होकर राष्ट्रीय एकीकरण और भाषा संरक्षण की इस परियोजना में योगदान देना चाहिए। ❑

राष्ट्रभाषा का प्रश्न और हिंदी

मोहन कुमार

शोधार्थी, हिंदी विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी (उ.प्र.)

अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण भारतवर्ष सदा से विविधता में एकता का केंद्र रहा है। ऐतिहासिक, पारंपरिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और कला कौशल के विभिन्न आयाम भारत भूमि पर निर्मित एवं विकसित होते रहे हैं। प्राकृतिक मौसम से लेकर मानवी भाषा, खान-पान, वेशभूषा, रीती-रिवाज, पर्व-त्यौहार आदि विभिन्न क्षेत्रों में भारत में पर्याप्त विविधता देखी जाती रही है। एक समय था जब भारतवर्ष को 'सोने की चिड़िया' कह कर संबोधित किया जाता था। परंतु लंबे समय की विदेशी पराधीनता, गुलामी और शोषण ने भारत को खोखला कर दिया। सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक सभी स्तरों पर भारतवर्ष के शोषण और दोहन की लंबी अवधि ने भारतीय समाज में आपसी कलह और वैमनस्य के विभिन्न स्वरूपों को रेखांकित करने का कार्य किया। जो स्वाधीनता प्राप्ति के बाद विकराल रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। राष्ट्रभाषा का प्रश्न एक ऐसा ही प्रश्न है। आजादी के पूर्व से ही हिंदी भारत की सर्वप्रमुख भाषा रही है। स्वाधीनता संग्राम में हिंदी भाषा के अवदान को भुलाया नहीं जा सकता है। महात्मा गांधी जैसे महान शख्सियतों ने हिंदी को भारत की स्वाधीनता की चेतना से जोड़कर देखा है। यह सच्चाई है कि स्वाधीनता आंदोलन के लंबे कालखंड में हिंदी ही वह भाषा थी जिसने संपूर्ण देश और देशवासियों को एक सूत्र में जोड़ने का काम किया और उनमें राष्ट्रीय मुक्ति और स्वाधीनता की चेतना को जागृत करने तथा लोगों को प्रेरणा प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण काम किया। इसलिए स्वाधीनता संग्राम के दौरान पूरे देश में यह स्पष्ट धारणा थी कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा बनेगी। अपने क्षेत्र विस्तार, समृद्ध शब्द भंडार, ऐतिहासिक परंपरा, वैज्ञानिक पद्धति और पठन-पाठन तथा लेखन की सरलता और सहजता के कारण हिंदी भाषा किसी भी अन्य भारतीय भाषा की तुलना में भारत की राष्ट्रभाषा बनने के लिए अधिक योग्य और उपयुक्त भाषा थी। संपूर्ण देश में इसका प्रसार था। परन्तु राजनीति अवरोधों के कारण स्वाधीनता के बाद हिंदी को संवैधानिक रूप से राष्ट्रभाषा का दर्जा न देकर राज्यभाषा का दर्जा दिया गया। और यहीं से राष्ट्रभाषा का प्रश्न सुलझने के बजाय उलझा रह गया। एक तरफ जहाँ हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के अपने वैज्ञानिक तर्क और कारण थे वहीं दूसरी ओर इसके विरोध का भी चलन शुरू हो गया। इन व्यवधानों के कारण आज तक हिंदी को लिखित रूप में राष्ट्रभाषा की संज्ञा नहीं दी जा सकी है।

यद्यपि हिंदी को संवैधानिक रूप से राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त न होकर राजभाषा का दर्जा प्राप्त है तथापि अपने व्यापक प्रयोजनों के कारण हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में प्रस्तुत होती है। समग्र विश्व में भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को ही देखा जाता है। वास्तविकता यही है

कि राजभाषा का दर्जा मिलने के बावजूद हिंदी ही सच्चे अर्थों में भारत की राष्ट्रभाषा है। अन्य कोई भी भारतीय भाषा राष्ट्रभाषा बनने के सभी मानदंडों को पूर्ण नहीं कर सकती है। एकमात्र हिंदी भाषा ही भारत की राष्ट्रभाषा बनने के अधिकांश मानदंडों को अधिकतम रूप से पूर्ण करती है। बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तराखंड जैसे राज्यों की मुख्य भाषा हिंदी ही है। जबकि गुजरात, पंजाब, जम्मू कश्मीर, पश्चिम बंगाल, जैसे राज्यों में हिंदी की मजबूत और व्यापक उपस्थिति और व्यवहार दर्ज किया जाता है। पूर्वोत्तर के राज्यों और दक्षिण भारतीय राज्यों में सर्वत्र हिंदी का प्रसार है। उन क्षेत्रों के लोग सुगमतापूर्वक हिंदी भाषा बोलते और समझते हैं। इस तरह सम्पूर्ण भारत में हिंदी भाषा को बोलने, समझने और लिखने-पढ़ने वाले लोग मौजूद हैं। यानी हिंदी का प्रसार पूरे देश में देखा जा सकता है। हिंदी का शब्द भंडार अत्यंत समृद्ध है। वाक्य संरचना, विराम चिह्नों के प्रयोग, उच्चारण और व्याकरणिक दृष्टिकोण से भी हिंदी अधिक वैज्ञानिक और सहज ग्राह्य है। इसके अतिरिक्त हिंदी भाषा का शब्द भंडार अत्यधिक समृद्ध तथा समावेशी संस्कृति का है। हिंदी भाषा मुख्य रूप से अपने शब्दों के लिए संस्कृत के तत्सम शब्दों पर और उससे बने तद्भव शब्दों पर निर्भर है तथापि अपने शब्द भंडार के वृद्धि और विस्तार के लिए

हिंदी को संवैधानिक रूप से राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त न होकर राज्यभाषा का दर्जा प्राप्त है तथापि अपने व्यापक प्रयोजनों के कारण हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में प्रस्तुत होती है। समग्र विश्व में भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को ही देखा जाता है। वास्तविकता यही है कि राज्यभाषा का दर्जा मिलने के बावजूद हिंदी ही सच्चे अर्थों में भारत की राष्ट्रभाषा है। अन्य कोई भी भारतीय भाषा राष्ट्रभाषा बनने के सभी मानदंडों को पूर्ण नहीं कर सकती है। एकमात्र हिंदी भाषा ही भारत की राष्ट्रभाषा बनने के अधिकांश मानदंडों को अधिकतम रूप से पूर्ण करती है।

हिंदी भाषा ने लोक बोलियों के देशज शब्दों को और विदेशी भाषाओं के शब्दों को भी ग्रहण किया है। यह प्रक्रिया निरंतर जारी है। हिंदी भाषा का एक स्पष्ट और वैज्ञानिक व्याकरण है जो इसे मानक स्वरूप प्रदान करता है। और सबसे बड़ी विशेषता जो हिंदी के राष्ट्रभाषा होने की आवश्यकता पर बल देती है वह है इसका समृद्ध और महत्त्वपूर्ण प्राचीन व ऐतिहासिक परिप्रेक्ष जो भारतीय जनता के साथ हिंदी भाषा के भावात्मक और आत्मिक लगाव और जुड़ाव के मूल में है।

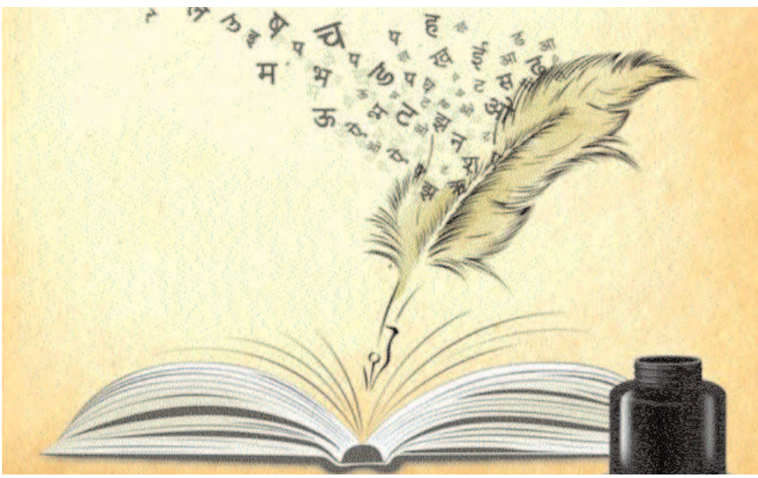

किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र के लिए उसके राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय गान और राष्ट्रीय नीति नियम के समान ही राष्ट्रभाषा का होना भी नितांत आवश्यक होता है। राष्ट्रभाषा किसी देश की पहचान से जुड़ी होती है। वैश्विक मंचों पर राष्ट्रध्वज और राष्ट्रभाषा हमारी विशिष्ट पहचान को दर्शाती है। राष्ट्रभाषा की आवश्यकता किसी भी समर्थ और समृद्ध देश के लिए बहुत जरूरी होती है। यह दुर्भाग्य है कि आजादी के इतने वर्षों के बाद भी भारतीय संघ ने अपने लिए किसी राष्ट्रभाषा को निर्धारित नहीं किया है। जबकि उसके पास प्रत्येक दृष्टिकोण से राष्ट्रभाषा बनने के योग्य हिंदी भाषा मौजूद है। आजादी के अमृत महोत्सव के समय में यह आवश्यक हो गया है कि सभी छोटी-बड़ी अड़चनों और बाधाओं को दूर कर सर्वसम्मति से वैधानिक रूप से हिंदी भाषा को भारतीय गणराज्य की राष्ट्रभाषा के रूप में विधिवत स्वीकार किया जाए। और इस प्रक्रिया में अन्य भारतीय भाषा-भाषी राज्यों और लोगों की चिंताओं का भी ध्यान रखा जाए। हमें इस बात को समझने की आवश्यकता है कि किसी भी भारतीय भाषा को हिंदी भाषा से न तो कभी कोई खतरा था, न है और न ही कभी हो सकता है। हिंदी ही नहीं बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं और दुनिया की विभिन्न भाषाओं को भी यदि खतरा है तो वह अंग्रेजी भाषा से है। अंग्रेजी भाषा की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति पूंजीवाद और बाजारवाद के कुचक्रों के सहारे आज दुनिया भर की भाषाओं को निगलने के लिए तैयार खड़ी है। इस स्थिति से किसी देश को वही भाषा बचा सकती है जो उस देश की ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और साहित्यिक दृष्टिकोण से प्रतिनिधि भाषा होगी। निस्संकोच हिंदी ही वह भाषा है जो उपर्युक्त आकांक्षाओं को पूरी कर भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है। एक संवैधानिक बाध्यता को छोड़ दें तो इसमें कोई संदेह नहीं कि अन्य तमाम शर्तों और मानदंडों को पूर्ण करती हुई हिंदी भाषा ही भारत की राजभाषा और राष्ट्रभाषा दोनों है। ❑

शोध की उच्च शिक्षा में महत्ता

डॉ. दिलीप सरदेसाई
पूर्व प्राचार्य
वी.एस.एस.डी. कालेज,
कानपुर (उ.प्र.)

शोध के क्षेत्र में क्या शोध पत्र के प्रकाशन को पीएच.डी. हेतु अनिवार्य करना उचित है? संभवत: हाँ, संभवत: नहीं। पीएच.डी. प्राप्त करने के लिए 'शोध पत्र का प्रकाशन करके फिर शोध ग्रन्थ को प्रस्तुत करना' अथवा अच्छा शोध कार्य सम्पन्न कराकर 'शोध ग्रन्थ को बिना शोध पत्र प्रकाशन के ही प्रस्तुत करना' इसमें से कौन सा विकल्प सही है? संभवतया यह वैसा ही प्रश्न है जैसा 'मुर्गी पहले कि अण्डा पहले', किन्तु शिक्षा में यह महत्त्वपूर्ण है।

संभवतया इसे समझने के लिए उच्च शिक्षा क्षेत्र में शोध की वर्षों पूर्व की परिस्थितियों का अवलोकन करना होगा। आज से पचास वर्ष पूर्व विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में असिस्टेन्ट प्रोफेसर (पूर्व में व्याख्याता) बनने के लिए पीएच.डी. धारक होना आवश्यक नहीं था। प्रख्यात विश्वविद्यालयों में भी प्रोफेसर पदनाम तक प्रोन्नत शिक्षक पीएच.डी. धारक नहीं थे। तत्कालीन ऐसे कई प्रोफेसर उत्कृष्ट शोध में व्यस्त थे और कई शोध पत्र भी उन्होंने प्रकाशित किये थे, यहाँ तक कि उनके निर्देशन में कई शोधार्थियों ने पीएच.डी. भी किया था, किन्तु वे स्वयं पीएच.डी. नहीं थे। राजनीति में भी ऐसे लोग हैं जैसे रक्षामंत्री राजनाथ सिंह जिन्होंने चार शोध पत्र अन्तरराष्ट्रीय जर्नल में प्रकाशित करने के बाद लोगों की टिप्पणी से बचने के लिए न शोध ग्रंथ प्रस्तुत किया और न ही पीएच.डी. की। प्रश्न यह है कि क्या उच्च शिक्षा में अच्छे शिक्षक बनने के लिए अथवा अच्छे शोध कार्य कराने के लिए पीएच.डी. धारक होना आवश्यक है? आज के इस ज्ञान-विज्ञान के सशक्तिकरण के युग में उच्च शिक्षा में कार्यरत शिक्षकों से निश्चित रूप से यह अपेक्षित है कि कम से कम परास्नातक स्तर पर अपने पाठ्यक्रम को पढ़ाते समय उस क्षेत्र में हो रहे शोध कार्य की छात्रों को जानकारी देते रहें। इसलिए शिक्षकों को शोध से जोड़ना अति आवश्यक है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शोध कार्य की महत्ता स्थापित करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U.G.C.) ने महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में असिस्टेन्ट प्रोफेसर (पूर्व में व्याख्याता) पद की नियुक्ति हेतु पीएच.डी. धारकों को प्राथमिकता देने की यथासंभव अनिवार्यता करने पर बल दिया। कालान्तर में यू.जी.सी. के जब यह संज्ञान में आया कि कुछ विषयों में पीएच.डी. प्राप्त करना अत्यधिक कठिन है, तथा इसके विपरीत अपवाद छोड़कर अनेक विषयों में पीएच.डी. अपेक्षित शोध मानकों को संज्ञान में लिए बिना ही करा दी जाती है तो आयोग ने पीएच.डी. की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया तथा नियुक्तियों के मानकों का सही प्रकार पालन हो सके इस हेतु नेट (N.E.T.) परीक्षा प्रारम्भ की गई तथा बाद में अनिवार्यता करने का प्रयत्न भी हुआ है। आज उत्तर प्रदेश के संदर्भ में देखें तो उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग तथा कई विश्वविद्यालयों में नेट उत्तीर्ण अभ्यर्थी जो पीएच.डी. धारक नहीं है उन्हें पीएच.डी. धारकों की तुलना में अधिमान देकर असिस्टेन्ट प्रोफेसर के पद पर नियुक्तियाँ की जा रही है। किन्तु अभी भी कुछ पदों पर प्रोन्नति हेतु पीएच.डी. धारक होने की अनिवार्यता बनी हुई है।

सन् 2012 में यू.जी.सी. द्वारा पीएच.डी. शोधग्रंथों की गिरती गुणवत्ता को रोकने के लिए शोध छात्रों को पीएच.डी. करने के पूर्व कम से कम छह माह का निर्धारित पाठ्यक्रम सफलता पूर्वक पूरा करने तथा शोधग्रंथ प्रस्तुत करने के पूर्व कम से एक शोध पत्र (Research Paper) विद्वत-समीक्षा जर्नल (Peer-Reviewed Journals) में प्रकाशित होने की अनिवार्यता रखी गयी। कुछ दिनों पूर्व प्रो. एम. जगदीश कुमार, अध्यक्ष, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (Chairman, U.G.C.) का एक लेख पढ़ने को मिला जिसमें इस अनिवार्यता को वह सही नहीं मानते। उनका मत था यदि गुणवत्तापूर्ण शोध कार्य करके समृद्ध सामग्री का शोध ग्रंथ प्रस्तुत करके पीएच.डी. प्राप्त की जाती है तो शोध पत्र का प्रकाशन तो उसका स्वाभाविक प्रतिफल है जो बाद में भी किया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में विज्ञान और मानविकी में हो रहे शोध के अन्तर को समझना भी आवश्यक है। स्टेम (STEM-Science, Technology, Engineering and Mathematics) क्षेत्र में हो रहे शोध में शोध पत्र के प्रकाशन की महत्ता की स्वीकार्यता प्रारंभ से ही अधिक रही है। इसके पीछे तर्क यह था कि संभव है कि पीएच.डी. के शोध कार्य करते समय कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण शोध हो जाये जिसका प्रकाशन तुरंत हो जाने से उस क्षेत्र के सभी अन्य शोधकर्ताओं को उनके स्वयं के शोध कार्य में दिशा निर्देशन दे सके। इसलिए विज्ञान में शोध पत्र का प्रकाशन महत्त्वपूर्ण माना जाता था जबकि मानविकी में शोध के विषय ऐसे होते हैं कि शोध को समग्र रूप से शोधग्रंथ के रूप में पीएच.डी. प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत करना न्याय संगत होता है। इसीलिए दोनों क्षेत्रों में शोध पत्र (Research Paper) के प्रकाशन की अनिवार्यता में भिन्नता रही है।

समय के साथ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा शोध की गुणवत्ता पुन: स्थापित करने के लिए कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं। अब पीएच.डी. प्राप्ति हेतु शोध छात्र बनने के लिए प्रथम लिखित परीक्षा उत्तीर्ण करना होता है। इसके बाद पीएच.डी. हेतु पंजीकरण होने के बाद छह माह का पाठ्यक्रम पूरा करके उत्तीर्ण होना होता है। फिर शोध की सम्पूर्ण अवधि में प्रति छह मास की शोध कार्य की प्रगति की समीक्षा की जाती है तथा शोध ग्रंथ प्रस्तुति के पूर्व कम से कम एक शोध-पत्र का विद्वत समीक्षा (Peer-Reviewed) जर्नल में प्रकाशन की अनिवार्यता भी की गयी है। इस सब के बाद शोध ग्रंथ की समीक्षा हेतु दो विशेषज्ञों द्वारा परीक्षण कराने का प्रावधान है जिस प्रक्रिया में यदि शोध कार्य स्तरीय न हो तो संशोधित भी कराया जा सकता है। सबसे अन्त में शोधार्थी को विशेषज्ञों की टीम के सामने अपने शोध ग्रंथ को डिफेन्ड (Defend) भी करना होता है। इसके कारण कई विश्वविद्यालयों को शोध छात्र से प्रत्येक चरण पर धन अर्जित करने का अवसर तो प्राप्त हो गया है किन्तु गुणवत्ता को सुधारने में कितनी सफलता मिली है इसकी आज भी शंका है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शोध कार्य की महत्ता स्थापित करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U.G.C.) ने महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में असिस्टेन्ट प्रोफेसर (पूर्व में व्याख्याता) पद की नियुक्ति हेतु पीएच.डी. धारकों को प्राथमिकता देने यथासंभव अनिवार्यता करने पर बल दिया। कालान्तर में यू.जी.सी. के जब यह संज्ञान में आया कि कुछ विषयों में पीएच.डी. प्राप्त करना अत्यधिक कठिन है, तथा इसके विपरीत अपवाद छोड़कर अनेक विषयों में पीएच.डी. अपेक्षित शोध मानकों को संज्ञान में लिए बिना ही करा दी जाती है तो आयोग ने पीएच.डी. की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया तथा नियुक्तियों के मानकों का सही प्रकार पालन हो सके इस हेतु नेट (N.E.T.) परीक्षा प्रारम्भ की गई तथा बाद में अनिवार्यता करने का प्रयत्न भी हुआ है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U.G.C.) द्वारा अब तक उठाये गये कदमों से एक बात स्पष्ट है कि 'शोध की गुणवत्ता को पुन: स्थापित करना' यही उसका उद्देश्य है। शोध ग्रंथ की प्रस्तुति के पूर्व 'शोध-पत्र के प्रकाशन की अनिवार्यता' होनी चाहिए अथवा नहीं, यह विवादित विषय हो सकता है। परन्तु समय के साथ पीएच.डी. की गुणवत्ता इतनी तेजी से गिरी थी, यहाँ तक कि पीएच.डी. के कार्य में धन की उपस्थिति (Involvement) की चर्चा भी होने लग गई थी। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि शोध-ग्रंथ की प्रस्तुति के पूर्व 'शोध-पत्र के प्रकाशन की अनिवार्यता' बनाये रखना तब तक जब तक कि पीएच.डी. की गुणवत्ता पुन: स्थापित न हो जाये, आवश्यक प्रतीत होता है।

इस विषय में एक और बात समझने की है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U.G.C.) जितने भी पीएच.डी. की गुणवत्ता स्थापित करने के लिए नियम बनाता है वस्तुत: जमीनी स्तर पर वो कारगर नहीं हो पाते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण यह बात समझने की आवश्यकता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U.G.C.) द्वारा बनाये सभी नियमों का पालन कराने का पूरा दायित्व शिक्षकों और केवल शिक्षकों पर ही है और भविष्य में भी रहेगा। अत: शिक्षकों का अभिविन्यास (Orientation) शिक्षा के प्रति और शोध के प्रति होना अति आवश्यक है और शिक्षकों का व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए कि वे किसी अन्य प्रलोभनों से अथवा दबावों से प्रभावित हुए बिना शोध की गुणवत्ता के प्रति समर्पित रहें। अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ देश में इसी विचार (Narrative) को स्थापित करने का कार्य कर रहा है। अन्य शिक्षक संगठन भी यदि हमारे साथ आयें तो परिस्थितियाँ शीघ्र बदली जा सकती हैं। ❑

महाराष्ट्र के प्रमुख संत एवं उनका साहित्य

डॉ. मनोज कुमार

परियोजना सहायक,
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केंद्र

भक्ति काल की निर्गुण धारा को ज्ञानाश्रयी शाखा एवं संत काव्य के रूप में भी जाना जाता है। संत काव्य शब्द को व्यापक अर्थ में और रूढ़ अर्थ में दो प्रकार से ग्रहण किया जा सकता है। यदि हम व्यापक अर्थ में देखें तो 'संत शब्द का प्रयोग प्राय: बुद्धिमान, पवित्र आत्मा, सज्जन, परोपकारी या सदाचारी व्यक्ति के लिए मिलता है और कभी-कभी साधारण बोलचाल में इसे भक्त, साधु व महात्मा जैसे शब्दों का भी पर्याय समझ लिया जाता है।' संत शब्द को इस व्यापक अर्थ में ग्रहण करने पर वे सभी साहित्यकार इस श्रेणी में प्रविष्ट हो जाएंगे, जो संत शब्द की परिभाषा में समाहित होते हैं। दूसरी ओर संत शब्द को यदि हम रूढ़िगत अर्थ में देखें, तो इस स्वरूप में भक्ति काल की निर्गुण धारा का ज्ञानाश्रयी साहित्य समाहित होता है, 'संत शब्द उनके लिए क्रमश: रूढ़ सा हो गया था और कदाचित अनेक बातों में उन्हीं के समान होने के कारण, उत्तरी भारत के कबीर साहब तथा अन्य ऐसे लोगों का भी पीछे वही नामकरण हो गया।'

जहाँ तक इस शब्द की व्युत्पत्ति का प्रश्न है, कुछ लोग इसे 'शान्त' शब्द का रूपांतर मानते हैं तथा कुछ अन्य लोग इसे 'सन्ति' शब्द का विकृत रूप मानते हैं।'

डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने 'संत' शब्द की व्युत्पत्ति की दृष्टि से इसका संबंध पालि भाषा के 'शांत' शब्द से जोड़ते हुए इसका अर्थ निवृत्तिमार्गी अथवा वैरागी से लिया है। इस रूप में वे संत को निर्गुण स्वरूप भी कहते हैं।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार - 'संत वह है जो पृथ्वी पर विचरण करते हुए दिव्य लोक का सन्देश भूतल पर लाता है, जो पक्षी के समान आकाश में उड़कर भी वृक्ष पर आकर विश्राम करता है, जो व्यष्टि को केंद्र में ऊँचा उठाकर समष्टि जीवन के प्रति आस्थावान होता है, जो स्वार्थ को त्यागकर सामूहिक हित की बात सोचता है, ऐसे व्यक्ति का जीवन नीरस और शून्य नहीं होता। वह आनंद से प्लावित और अक्षय प्रेरणा से संचालित होता है।'

महाराष्ट्र मुख्य रूप से संतों की भूमि है और भारतीय संस्कृति और धर्म का प्रमुख केंद्र रहा है और आज भी है। मराठी साहित्य में 'वारकरी संप्रदाय' का महत्त्व अधिक है। वारकरी भक्ति और परमानंद की स्थिति को प्राप्त करता है। कई महान मराठी संत कवि इस संप्रदाय के अंतर्गत आते हैं। संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत जनजा, संत गोरा कुंभार आदि। संत तुकाराम, संत नीलोबा आदि तेरहवीं शताब्दी के भक्ति कवियों से 17वीं से 18वीं शताब्दी तक। वैसे तो महाराष्ट्र में अनेक संत हुए है, किन्तु कुछ संत ऐसे हैं जिनकी लोकप्रियता और विचार आज भी समाज में प्रासंगिक बने हुए हैं। कुछ ऐसे ही महाराष्ट्र के प्रमुख संतों का विवरण निम्नवत है -

संत ज्ञानेश्वर महाराज

संत ज्ञानेश्वर का जन्म 13वीं शताब्दी में मध्य रात्रि श्रवण कृष्ण अष्टमी, शक 1197 (1275 ई.) में अपेगांव में हुआ था। उनके पिता का नाम विट्ठलपंत कुलकर्णी था। उनकी माता रुक्मिणीबाई थीं। उनके दादा-दादी गोविंदपंत और मीराबाई थे। निवृतिनाथ ज्ञानेश्वर के बड़े भाई हैं। उनके भाई-बहन निवृति, सोपान और मुक्ताबाई का जन्म क्रमश: शक 1195, 1199 और 1201 में हुआ था।

अपेगांव औरंगाबाद जिले में पैठण के पास गोदावरी नदी के तट पर स्थित एक छोटा सा गाँव है। ज्ञानेश्वर (संत ज्ञानेश्वर महाराज) के पिता विट्ठलपंत मूल रूप से एक तपस्वी थे। वे शादी के दौरान सेवानिवृत्त हुए और काशी चले गए। जब गुरु को पता चला कि वे विवाहित हैं, तो गुरु ने उन्हें वापस भेज दिया। उनके आदेशानुसार गृहस्थाश्रम में पुनः प्रवेश करने के बाद, विट्ठलपंत के चार बच्चे हुए। उनके नाम निवृति, ज्ञानदेव, सोपान और मुक्ताबाई थे। विट्ठलपंत तीर्थ यात्रा पर आए और आलंदी में बस गए। संत ज्ञानेश्वर और उनके भाई-बहनों को आलंदी के ब्राह्मणों ने नकार दिया। विट्ठलपंत ने धर्मशास्त्रियों से पूछा कि समाधान क्या है। ब्राह्मणों ने कहा कि इसके लिए केवल दंड है।

विट्ठलपंतनी और रुक्मिणीबाई ने अपने बच्चों के लिए आत्महत्या और प्रायश्चित किया ताकि वे संस्कारों से वंचित न रहें और उनके भविष्य की भलाई के लिए। अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद, संत ज्ञानेश्वर और उनके भाई-बहनों को लोगों ने बहुत परेशान किया। उन्हें भोजन और पानी जैसी बुनियादी जरूरतों से वंचित कर दिया गया। बाद में ये भाई पैठण गए और वहाँ ज्ञानेश्वर ने अपनी विद्वता सिद्ध की।

संत ज्ञानेश्वर ने बहुत मधुर भाषा में शब्दों की रचना की। उन्होंने संत नामदेव के साथ मिलकर भागवत धर्म-वारकरी संप्रदाय का प्रचार किया। 700 साल से चली आ रही परंपरा वाले वारकरी संप्रदाय के आज भी महाराष्ट्र में लाखों अनुयायी हैं। भवार्थदीपिका अहमदनगर जिले के नेवासा में ज्ञानेश्वर द्वारा भगवद गीता का अनुवाद है।

प्रमुख रचनाएँ : ज्ञानेश्वर का चरित्र, सार्थ ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभाव, सार्थ चंगदेव पासष्टी, सार्थ पसायदान, सार्थ हरि पाठ, ज्ञानेश्वर का अभंग, ज्ञानेश्वर की विराणी, ज्ञानेश्वर की आरती, ज्ञानेश्वर का तीर्थ क्षेत्र।

संत तुकडोजी महाराज

संत तुकडोजी का जन्म 30 अप्रैल, 1909 को अमरावती जिले के यवली गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम बंदोपंत और माता का नाम मंजुला था। वह ब्रह्मभात कुल के थे। 'भट' शब्द भ्रष्ट हो गया और उन्हें भट कहा गया। 11 मई 1909 को अकोट के श्री हरिबुवा, मदन के श्री संत गुलाब महाराज और यवली के महाराज ने बालक का नाम 'माणिक' रखा। उनकी प्राथमिक शिक्षा चंदूर बाजार में हुई। श्री संत अदकोजी महाराज ने उनका नाम 'तुकद्य' रखा।

वर्ष 1925 में उन्होंने 'आनंदामृत' पुस्तक लिखी। वे स्वयं भजन, कीर्तन, प्रवचन करने लगे। उन्होंने खंजर पर उत्कृष्ट भजन गाए। शनिवार 23 फरवरी, 1935 को सालबर्डी में अज्ञात का आगमन हुआ। बाद में वे गांधी जी से जुड़ गए। उन्हें स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए शुक्रवार, 28 अगस्त, 1942 को गिरफ्तार किया गया था। और दिसंबर में रिलीज हुई थी। 1943 में विश्वशांतिनम सप्ताह हुआ। सोमवार 5 अप्रैल 1943 को श्री गुरुदेव मुद्रालय की स्थापना हुई और गुरुदेव पत्रिका का प्रकाशन हुआ। अखिल भारतीय श्री गुरुदेव सेवा मंडल की स्थापना शुक्रवार 19 नवम्बर 1943 को हुई थी। उन्होंने हरिजनों के लिए मंदिर खोले। ऐसा कहकर ग्रामीणों को जगाओ। भेदभाव मिटाओ।

ऋषियों ने लोगों को मोक्ष का मार्ग बताते हुए शास्त्रों की रचना की। लेकिन चूंकि यह संस्कृत भाषा में है, इसलिए यह ज्ञान आम लोगों की भाषा में देना आवश्यक था। वह काम संतकवि ने किया था। इस प्रकार मराठी भाषा में काव्य परंपरा का निर्माण हुआ। उन्हें

समाज में एक अच्छे मोड़ की जरूरत थी।

संत तुकडोजी के मतानुसार एक आम आदमी के लिए तार्किक और विद्वतापूर्ण पाठ क्या अच्छा है? आपके कल्याण और उत्थान के लिए कुछ कहने वाली पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिए। यह आपको निश्चित रूप से मार्गदर्शन देगा कि क्या करना है और क्या नहीं करना है।

प्रमुख रचनाएँ : तुकडोजी का चरित्र, ग्राम गीता, आनंदामृत, आत्मप्रभाव, तुकडोजी का भजन, तुकडोजी के श्लोक, तुकडोजी के सुविचार, तुकडोजी की कविता, तुकडोजी की आरती।

संत तुकाराम

संत तुकाराम (उर्फ तुकोबा) सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी के एक वारकरी संत थे। उनका जन्म वसंत पंचमी-माघ शुद्ध पंचमी को हुआ था। पंढरपुर के विट्ठल या विठोबा तुकाराम के देवता थे। तुकाराम को वारकरी 'जगदगुरु' के नाम से जानते हैं। तुकाराम एक लोक कवि थे। संत तुकाराम एक प्रबुद्ध, निडर और एक अर्थ में विद्रोही संत कवि थे। वेदांत, एक विशेष वर्ग का पारंपरिक एकाधिकार, तुकोबा की अभंगवाणी से आम लोगों के लिए प्रवाहित हुआ। अभंग ने कहा कि केवल तुकोबंच (अभंग तुक्यचा) को ही इतनी लोकप्रियता मिली। संत तुकाराम की भावकविता अभंग है, यह अभंग महाराष्ट्र की सांस्कृतिक परंपरा का एक महान प्रतीक है। वारकरी, ईश्वर से डरने वाले, साहित्यिक, विद्वान और सामान्य प्रशंसक अभी भी उनके अभंगों का अध्ययन करते हैं। उनके अभंग गांवों के अशिक्षित लोगों के दैनिक पाठ में भी हैं। आज भी 'अभंग' की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है।

वे दृढ़ता से महाराष्ट्र के दिल में स्थापित हैं। उनके अभंगों में वापसी का स्पर्श है। मंत्रों की पवित्रता शब्दावली में व्याप्त है। उनका अभंग 'अक्षर वनग्रामया' है। उनकी सहानुभूति उनकी भावनाओं में है। उनके काव्य में भाषा की मधुरता और रसात्मकता अतुलनीय है। कई लोगों ने संत तुकाराम के अभंग का कई हिस्सों में अध्ययन करके उनकी सुंदरता को उजागर करने का प्रयास किया है।

प्रमुख रचनाएँ : तुकाराम का चरित्र, तुकाराम का अभंग, तुकाराम का हरी पाठ, तुकाराम की आरती, तुकाराम का तीर्थ क्षेत्र।

संत नामदेव

संत नामदेव (1270 – 3 जुलाई, 1350) महाराष्ट्र के वारकरी संत कवि थे। उनका अंतिम नाम 'रेलेकर' था। दमशेती संत नामदेव के पिता थे और गोनै उनकी माता थीं। दमशेती का धंधा कपड़े सिलने का था, इसलिए वे एक दर्जी थे। वर्तमान में हिंगोली जिले में नरसी-बामनी संत नामदेव का जन्म स्थान है। वह मराठी भाषा के सबसे पुराने कवियों में से एक थे। उन्होंने पंजाबी और ब्रज भाषाओं में कविताएँ भी लिखीं। सिख गुरु ग्रंथ साहिब में उनकी बासठ कविताएँ हैं।

महाराष्ट्र मुख्य रूप से संतों की भूमि है और भारतीय संस्कृति और धर्म का प्रमुख केंद्र रहा है और आज भी है। मराठी साहित्य में 'वारकरी संप्रदाय' का महत्त्व अधिक है। वारकरी भक्ति और परमानंद की स्थिति को प्राप्त करता है। कई महान मराठी संत कवि इस संप्रदाय के अंतर्गत आते हैं। संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत जनजा, संत गोरा कुंभार आदि। संत तुकाराम, संत नीलोबा आदि तेरहवीं शताब्दी के भक्ति कवियों से 17वीं से 18वीं शताब्दी तक। वैसे तो महाराष्ट्र में अनेक संत हुए है, किन्तु कुछ संत ऐसे हैं जिनकी लोकप्रियता और विचार आज भी समाज में प्रासंगिक बने हुए हैं।

नामदेव मराठी में पहले चरित्र लेखक और आत्मकथाकार और कीर्तन के माध्यम से भागवत धर्म को पंजाब तक ले जाने वाले पहले उपदेशक थे। संत ज्ञानेश्वर के शासनकाल के दौरान भक्तशिरोमणि संत नामदेव का निधन हो गया। उनकी कीर्तन कला के कारण ही उन्हें असली पांडुरंग चाल चलने की ख्याति प्राप्त थी। माना जाता है कि संत नामदेव असली श्री विट्ठल के करीबी सहयोगी रहे हैं। संत नामदेव वारकरी संप्रदाय के एक महान उपदेशक हैं और उन्होंने इस संबंध में पूरे भारत में भावनात्मक एकता हासिल की है। वह स्वेच्छा से भागवत धर्म का झंडा पंजाब ले गए।

निवृतिनाथ, ज्ञानेश्वर महाराज, सोपानदेव, मुक्ताबाई, संत नामदेव, चोखामेला, विसोबा खेचर जैसे संत संत गोरा कुंभार के पास तेराधोकी में एकत्रित हुए थे। इस अवसर पर संत ज्ञानेश्वर के अनुरोध पर गोरोबका ने श्रोताओं की आध्यात्मिक तैयारी पर अपने विचार व्यक्त किए थे। इस घटना के बाद ही संत नामदेव ने विसोबा खेचर को अपना आध्यात्मिक गुरु प्राप्त किया।

संत नामदेव की अभंगगाथा (लगभग 2500 अभंग) प्रसिद्ध है। उन्होंने हिंदी भाषा में कुछ अभंग (लगभग 125 छंद) की रचना की। इनमें से लगभग बासठ अभंग (नामदेवजी की मुखबनी) सिख संप्रदाय के गुरुग्रंथ साहब में गुरुमुखी लिपि में दर्ज हैं। संत नामदेव मराठी भाषा के पहले आत्मकथाकार और चरित्र लेखक माने जाते हैं। संत नामदेव ने आदि, समाधि और तीर्थवली या तीर्थवली के तीन अध्यायों में संत ज्ञानेश्वर के चरित्र का वर्णन किया है।

संत ज्ञानेश्वर (1291 ई.) की यात्रा के बाद संत नामदेव का जीवन बदल गया। उन्होंने कई संतों के साथ पूरे भारत में तीर्थयात्राएँ कीं। उनके कीर्तन में कई अच्छे शास्त्रों का उल्लेख किया गया है। 'नामदेव कीर्तन कारी, पुधे देव नचे पांडुरंग' – उनकी योग्यता थी। 'नचू कीर्तनचे रंगी, ज्ञानदीप लवू जगी' उनके जीवन का लक्ष्य था।

भागवत धर्म के पहले उपदेशक के रूप में, संत नामदेव ने संत ज्ञानेश्वर के पुनरुत्थान समाधि के बाद लगभग 50 वर्षों तक भागवत धर्म का प्रचार किया। उन्होंने विपरीत परिस्थितियों में महाराष्ट्र की भावनात्मक एकता को बनाए रखने के लिए कड़ी मेहनत की।

प्रमुख रचनाएँ : नामदेव का चरित्र, नामदेव का अभंग, नामदेव के हरिपाठ, नामदेव की आरती, नामदेव का तीर्थ क्षेत्र।

संत निवृतिनाथ

निवृतिनाथ का जन्म वर्ष 1273 या 1268 बताया जाता है। निवृतिनाथ चार भाई-बहनों में सबसे बड़े थे, जिनका नाम ज्ञानेश्वर, सोपानदेव मुक्ताई और निवृतिनाथ था। निवृतिनाथ ज्ञानेश्वर के गुरु थे। निवृतिनाथ ने ज्ञानेश्वर को गीता को संस्कृत में ऐसे शब्दों में लिखने का आदेश दिया जो आम लोग समझ सकें। इसी तरह, ज्ञानेश्वर ने भावार्थ दीपिका (ज्ञानेश्वरी) लिखी। गैनीनाथ और जी. हिनीनाथ निवृतिनाथ के गुरु थे। निवृतिनाथ की प्रसिद्धि और महत्त्व कवि के रूप में नहीं, बल्कि ज्ञानेश्वर के मार्गदर्शक के रूप में है।

निवृतिनाथ के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने अपना संपूर्ण आध्यात्मिक धन ज्ञानेश्वर को दे दिया और उन्हें सफलता दिलाई और हम उस सफलता से सेवानिवृत्त हो गए। ज्ञानेश्वर ने कई जगह उनके प्रति सम्मान व्यक्त किया है। ज्ञानेश्वर द्वारा संतों के साथ किए गए कई तीर्थों में निवृतिनाथ भी साथ थे। कहा जाता है कि निवृतिनादेवी, निवृतिसार और उत्तरगीतिका भी निवृतिनाथ द्वारा लिखी गई हैं, हालांकि वे अनुपलब्ध हैं। रा. एम. आठवले ने 'निवृत्तेश्वरी' नामक पुस्तक को संबोधित किया है। ज्ञानेश्वरी की तरह, यह गीता पर एक भाष्य है। हालांकि, यह साबित नहीं हुआ है कि यह किताब निवृतिनाथ की है। निवृतिनाथ की दो पांडुलिपियाँ, 'सातिक भगवद गीता' और 'समाधि बोध', धुले के श्री समर्थवाग्देवता मंदिर में रखी गई हैं।

प्रमुख रचनाएँ : निवृतिनाथ का चरित्र, निवृतिनाथ का अभंग, निवृतिनाथ का हरिपाठ, निवृतिनाथी की आरती, निवृतिनाथ का तीर्थ क्षेत्र।

संत गोरोबा

गोरा कुंभर (1267 – 10 अप्रैल 1317) महाराष्ट्र में वारकरी संप्रदाय के एक संत थे। उन्हें नामदेव और ज्ञानेश्वर का समकालीन माना जाता है। उनका जन्म वर्ष 1189 (1267 ई.) में हुआ होगा। श्वेत कुम्हार विट्ठल (पांडुरंग) का बहुत बड़ा भक्त था।

उनके आठ बेटे थे। लेकिन एक-एक कर सभी गायब हो गए। बाद में परमात्मा पांडुरंग एक ब्राह्मण के वेश में उनके घर आए। जब उन्होंने उदास चेहरा देखा, तो देवताओं ने उनसे पूछा, 'क्या तुम उदास हो?' माधव बाबू उन्हें कालेश्वर के पास कब्रिस्तान में ले गए, और उन्हें वह स्थान दिखाया जहाँ भगवान ने सभी आठ बच्चों को दफनाया था। देवताओं ने सभी बच्चों को लाशों को खोदने के लिए कहा। पिता ने सभी आठ बच्चों की शवों को इसी तरह निकाला। भगवान ने अपने हाथ के स्पर्श से सात बच्चों को देखा और पुनर्जीवित किया और उन्हें स्वर्ग भेज दिया, और फिर आठवें बच्चे को फिर से जीवित कर दिया।

वह भी स्वर्ग की ओर चल पड़ा। लेकिन भगवान ने इसे जाने नहीं दिया। भगवान ने उसे अपनी बाहों में ले लिया और उसे माधवबुवा रखुमाई को सौंप दिया। भगवान ने कहा, 'मैंने तुम्हारा नाम गोरोबा रखा क्योंकि मैंने तुम्हें गोरी से बाहर निकाला था।'

ऐसा लगता है कि इस किंवदंती के पीछे एक चमत्कार है। संतों के चरित्र में चेतना के ऐसे कई चमत्कारों का वर्णन है। चमत्कारों की चेतना है। लेकिन अक्सर संपन्न समाज ऐसे चमत्कारों से जाग्रत होने के बजाय अपनी जगह अंधविश्वास को बढ़ता हुआ देखता है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि चमत्कार न केवल उनकी उपलब्धि है, बल्कि संतों के जीवन को आकार देने का उनका साधन भी है।

इसलिए इसे केवल उनके जीवन का चमत्कारिक हिस्सा ही माना जाना चाहिए। इसे अक्षरश: लेना उचित नहीं है। इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि माधवबुवा धार्मिक और सहनशील थे। कालेश्वर के प्रति उनकी अगाध आस्था और भक्ति थी। लगातार सात बच्चों की मौत हो गई, लेकिन आठवां बेटा गोरा कुंभर बच गया। इसलिए माधवबुवान को उनकी आस्था, भक्ति की महिमा का अनुभव हुआ। कोई केवल अनुमान लगा सकता है कि गारोबा का जन्म बहुत प्रतिकूल परिस्थितियों में हुआ था।

प्रमुख रचनाएँ : गोरोबा का चरित्र, गोरोबा का अभंग, गोरोबा का संगीत, गोरोबा आरती, गोरोबा का तीर्थ क्षेत्र।

संत रामदास

संत रामदास का जन्म श्रीक्षेत्र जंबसमर्थ (जालना जिला) के ग्राम शक 1530 (वर्ष 1608) में राम नवमी के दिन अर्थात चैत्र शुद्ध नवमी के दिन राम जन्म के शुभ अवसर पर अर्थात् दोपहर के समय हुआ था। थोसर परिवार एक सूर्य उपासक था। जब नारायण सात वर्ष के थे तब उनके पिता सूर्यजीपंत की मृत्यु

हो गई। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। लेकिन नारायण को बचपन से ही घृणा थी। औरों से अलग था। वह बहुत बुद्धिमान, दृढ़ निश्चयी और शरारती था।

उसका लक्ष्य हाथ में काम को अंजाम देना था। बचपन में नारायण बहुत साहसी थे। वह पेड़ों से कूदने, बाढ़ में तैरने और घोड़ों की सवारी करने में अच्छा था। उसके आठ दोस्त थे। एक दोस्त बढ़ई का बेटा था और दूसरा ईंट बनाने वाला। एक लोहार और दूसरा लोहार। नारायण ने बचपन में इन मित्रों की संगति में व्यवसाय का सर्वोत्तम ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उन्होंने अकेले अवलोकन से बहुत कुछ सीखा। एक बार एक सरकारी अधिकारी जाँच के लिए सूर्यजीपंत के पास आया। सूर्यजीपंत प्रखर थे। वे पेशे से ग्राम प्रधान थे। लेकिन रहने की स्थिति सरल होने के कारण, घर में बैठने की ऊँची जगह नहीं थी, इसलिए अधिकारी को बैठकर सारा काम करना पड़ता था। सूर्यजीपंत का काम बेहतरीन था। हालाँकि, अधिकारी ने जाते समय एक टिप्पणी की – 'इतना बड़ा अधिकारी, लेकिन उनके घर में बैठने के लिए कोई साधारण बैठक नहीं है?' इस टिप्पणी ने नारायण के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाई। उसने अपने 7-8 दोस्तों को इकट्ठा किया। वे लकड़ी के तख्ते, पत्थर, ईंटें, मिट्टी लेकर आए और रात से ही दोस्तों की मदद से ऊँचे आसन पर बैठ गए। इतना ही नहीं, उन्होंने अधिकारी को वापस घर बुलाया और बैठक दिखाई। अधिकारी ने नारायण की प्रशंसा की।

प्रमुख रचनाएँ : रामदास का चरित्र, सार्थ दासबोधि, मनचे श्लोक, रामदास के सारथा अभंग, आत्माराम, आत्माराम विवरण, भीमरूपी स्त्रोत, करुणा के स्त्रोत, स्फुट अभंग, स्फुट श्लोक, युद्धकांड, किष्किंधा कांड, सुंदरकाण्ड, मानसपूजा, राममंत्र के श्लोक, रामदास की आरती।

संत एकनाथ महाराज

संत एकनाथ का जन्म वर्ष 1533 में एक कुलीन ब्राह्मण के घर हुआ था। उनकी माता का नाम रुक्मिणी था और उनके पिता का नाम सूर्यनारायण था। लेकिन दुर्भाग्य से एकनाथ (संत एकनाथ महाराज) के लिए जब वह एक शिशु थे तो उनके माता-पिता देवघर चले गए और उनकी देखभाल उनके दादा चक्रपाणि ने की। चक्रपाणि के पिता, एकनाथ के ससुर संत भानुदास विट्ठल के भक्त थे। एकनाथ के पास बचपन से ही तेज बुद्धि थी।

छह साल की उम्र में, उनके दादा ने उन्हें शिक्षित करने के लिए एक विद्वान पंडित को काम पर रखा था। उन्होंने उस पंडित से रामायण, महाभारत, ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव आदि का अध्ययन किया। क्योंकि उनमें ईश्वर भक्ति का पागलपन भर रहा था। एक बच्चे के रूप में, वे एक गुरु की तलाश में गए और दौलताबाद के किले में अपने गुरु जनार्दन स्वामी के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए। फाल्गुन वाद्य षष्ठी का दिन था।

एकनाथ देवगिरी (दौलताबाद) के जनार्दनस्वामी को अपना गुरु मानते थे। एकनाथ ने उनसे वेदांत, योग और भक्ति योग सीखा। उन्होंने ध्यान और वैदिक अध्ययन में बहुत समय बिताया। गुरु के साथ तीर्थयात्रा करने के बाद, उन्होंने गृहस्थाश्रम स्वीकार कर लिया। उनकी पत्नी का नाम गिरिजाबाई है।

एकनाथ के असली आदमी प्रतिष्ठान उर्फ पैठण निवासी भास्करपंत कुलकर्णी थे। संत भानुदास एकनाथ के दादा हैं। उन्होंने सूर्य की पूजा की। श्री संत एकनाथ के पिता का नाम सूर्यनारायण था। माता का नाम रुक्मिणी था। माना जाता है कि एकनाथ का जन्म 1450 और 1455 के बीच हुआ था। माता-पिता के बीच का रिश्ता लंबे समय तक नहीं चला। उनका पालन-पोषण उनके दादा ने किया था। चक्रपाणि और सरस्वती उनके दादा-दादी थे। एकनाथ की बचपन से ही आध्यात्मिक ज्ञान और हरिकर्तन में रुचि रही है। एकनाथ के गुरु सद्गुरु जनार्दनस्वामी देवगढ़ (देवगिरी) में यवन दरबारी अधिपति थे। ये चालीसगाँव के मूल निवासी हैं; उनका अंतिम नाम देशपांडे था। वह एक भक्त था।

संत एकनाथ ने उन्हें गुरु के रूप में सलाह दी थी। ऐसा कहा जाता है कि नाथन ने कड़ी मेहनत की और गुरुसेवा की और वास्तव में दत्तात्रेय ने उन्हें दर्शन दिए। नातान ने कई तीर्थ भी किए। नाथन ने एक लड़की से शादी की। लड़की पैठण के पास वैजापुर की रहने वाली थी। एकनाथ और गिरिजाबाई की दो बेटियाँ थीं, गोदावरी और गंगा, और एक बेटा, हरि। उनका पुत्र हरिपंडित हुआ। वह नातान का शिष्य बन गया। एकनाथ की समाधि के बाद हरिपंडित हर साल आषाधिवारी के लिए नाथ के जूते पंढरपुर ले जाने लगे।

प्रमुख रचनाएँ : एकना का चरित्र, सार्थ एकनाथी भागवत, भावार्थ रामायण, एकनाथ का हरिपथ, एकना का अभंग, एकनाथ की गौलानी, चतु:श्लोकी भागवत, रुक्मिणी स्वयंवर, आनंदलहरी, स्वात्मसुख, एकनाथ की आरती, एकनाथ की कविता, एकनाथ की भारूड, तीर्थ यात्रा।

उपर्युक्त संतों के आरंभिक संतों के अतिरिक्त महाराष्ट्र की यह संत परम्परा अत्यंत विस्तृत है, जिनमें आगे आने वाले संतों में – सोपानदेव, संत मुक्ताबाई, संत संताजी, संत सेना, संत निलोब, संत जनार्दन, संत कन्हो, संत वेनाबाई, सोयाराबाई, भानुदास, संत केशवदास, संत वामनभाऊ, संत अमृतराय, संत चांगदेव इत्यादि प्रमुख हैं। जिन्होंने महाराष्ट्र सहित देश के अनेक भागों में अपने विचारों से समाज सुधार का कार्य कर, लोग का मार्गदर्शन किया। ❑